ओ३म्

सत्यापन क्रमांक : RAJHIN/2015/60530

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : ९ अंक : १० १ अक्टूबर २०२३ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० ₹ वार्षिक

200 वीं महर्षि दयानन्द सरस्वती जयन्ती १८८१-२०८१वि.

ऋषि स्मृति सम्मेलन विशेषांक

ध्वजारोहण

विद्वज्जन-सम्मान

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा लिखित समस्त साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों व सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार, स्थापना व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

वर्ष : ६ अंक : १०

दयानन्दाब्द : -१९९

विक्रमसंवत् : माह-आश्विन २०८०

कलि संवत् ५१२४

सृष्टि संवत् :१,९६,०८,५३,१२४

सम्पादक मण्डल :

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री, सिरोही

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

कार्यवाहक सम्पादक :

कमल किशोर आर्य

Email: sampadakmdsprakash@gmail.com

9460649055

प्रकाशक : 0291-2516655

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जसवन्त कॉलेज के पास, जोधपुर ३४२००१

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है । किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र जोधपुर ही होगा ।

Web.-www.dayanadsmritinyas.org.

वार्षिक शुल्क :१५० रुपये

आजीवन शुल्क : १५०० रुपये (१५वर्ष)

अनुक्रमणिका

क्या	कहाँ
१४० वाँ ऋषि स्मृति सम्मेलन	
मिति भाद्रपद पूर्णिमा सं आश्विन् कृ. द्वितीया संवत् २०८० विक्रमी	४ से ३६
शुक्रवार २९.०९.२०२३ से रविवार ०१.१०.२०२३	

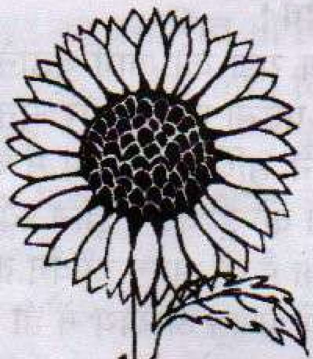

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास

बैंक ऑफ बडौदा खाता संख्या-01360100028646

IFSC BARB0JODHPU

यह पांचवा अक्षर जीरो है

१४० वाँ ऋषि स्मृति सम्मेलन

मिति भाद्रपद पूर्णिमा सं आश्विन् कृ. द्वितीया संवत् २०८० विक्रमी

शुक्रवार २९.०९.२०२३ से रविवार ०१.१०.२०२३

प्रथम दिवस:प्रात:कालीन यजुर्वेद पारायण यज्ञ सत्र

महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर द्वारा आयोजित तीन दिवसीय १४० वाँ ऋषि स्मृति सम्मेलन आज भाद्रपद पूर्णिमा शुक्रवार 29 सितंबर 2023 खीस्ताब्द को विश्ववारा आर्ष कन्या गुरुकुल रोहतक की पद्मश्री आचार्या सुकामा जी के ब्रह्मत्त्व में न्यास निर्मित भव्य और पवित्र यज्ञशाला में यजुर्वेद पारायण यज्ञ से आरंभ हुआ।

यजमानों को यज्ञोपवीत प्रदान करने से पूर्व आचार्या जी ने बताया कि यज्ञरूप परमेश्वर ने समस्त सृष्टि को यज्ञ रूप बनाया है और मनुष्य को भी आदेश किया है कि हे मानव!तेरा यह स्वरूप यज्यीय है और यज्ञ के लिए है! यज्ञ का यह भाव हम अपने समस्त कर्मों में बनाए रखने के लिए यज्ञोपवीत धारण करते हैं। यह यज्ञ या संसति का प्रतीक है। इसके तीन धागों से तीन के प्रतीकों का महत्व हम अपने जीवन में समझते हैं। ईश्वर जीव प्रति; ज्ञान कर्म उपासना; पितृऋण देवऋण ऋषिऋण; स्तुति प्रार्थना उपासना आदि। यज्ञोपवीत हमें यज्ञ के निकट लेकर जाता है, यज्ञीय भावों को प्राप्त करता है। आचार्या जी ने यज्ञोपवीत से जुड़े ऐतिहासिक घटनाओं को बताते हुए कहा कि एक बार यह यज्ञोपवीत धारण करने के बाद उतरते नहीं है। गला कट सकता है किंतु वैदिक या यज्ञ या संस्कृति का प्रतीक यह यज्ञोपवीत हमारे गले से उतर नहीं सकता। यज्ञोपवीत टूट या मालिन हो जाने पर सब काम परे रखकर, भोजन इत्यादि भी परे रख कर पहले मंत्रपाठ के साथ यज्ञोपवीत बदलें और उतरे हुए यज्ञोपवीत को इधर–उधर नहीं डालकर किसी वृक्ष की टहनी पर बांध देवें।

यजुर्वेद पारायण यज्ञ को आगे बढ़ाने से पूर्व वेदों की महिमा बताते हुए आचार्याजी ने सबसे बुलवाया:'वेद का पढ़ना पढ़ना और सुनना सुनना आर्यों का परम धर्म है।' साथ ही बताया कि परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के आरंभ में चारों वेदों का ज्ञान प्रदान किया। समस्त प्राच्यऔर पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों को ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार किया है। मनुष्य वेदवाणी के प्रकाश में अपना समस्त कर्तव्य पूरा करता है तो अपने जीवन को सफल कर पता है। यजुर्वेद मुख्यत: कर्म का वेद माना जाता है यजुर्वेद के प्रथम अध्याय में ही श्रेष्ठतम कर्म करने का उपदेश है। 40वें अध्याय में भी कुर्वन्नेवेह कर्माणि के भाव से 100 वर्ष तक कर्म करते रहने की प्रेरणा दी है। ऋग्वेद ज्ञान का मुख्य प्रतिपादन करता है, यजुर्वेद कर्म का, सामवेद उपासना का और अथर्ववेद विभिन्न प्रकार के विज्ञान का वेद है।

यजुर्वेद के महर्षि दयानंद त भाष्य की विशेषता बताते हुए आचार्या जी ने कहा कि महर्षि ने वेदों को वियोगवाद की कारा से बाहर निकाल दिया और प्रत्येक क्रिया के साथ उस मंत्र को लगाया जिसके अर्थ की क्रिया के साथ संगति हो। यजुर्वेद के चतुर्थ अध्याय के प्रथम मंत्र का अतिम चरण **'स्वधिते मैनँ हिंसी:'** हानि या हिंसा का निषेध करता है। महर्षि ने इसे अंतिम चरण

का मुंडन संस्कार में विनियोग किया गया है जिसमें बाल काटते समय बालक को नुकसान ना हो इसके लिए बाल काटने के औजार को लक्ष्य करके किया है। किंतु मध्यकाल में इस मंत्र का प्रयोग यज्ञ में पशु वध के लिए किया जाता था, जबकि मंत्र हिंसा का स्पष्ट निषेध कर रहा है।

इस सत्र में यजुर्वेद के चौथे और पाँचवें अध्याय के मंत्रों से आहुति दी गयीं। आहुतियों के मध्य विराम लेते हुए यजुर्वेद के विभिन्न मंत्रों की शिक्षा से श्रोताओं को अवगत कराया।

चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ मंत्र **'चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनावच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम्।।'**की व्याख्या करते हुए आचार्या जी ने बताया कि इस मंत्र में बहुत ही पवित्रता की कामना विज्ञान के स्वामी परमात्मा से की गई है कि वह मुझे पवित्र करें! हम 100 वर्ष की आयु भी प्राप्त करें तो पवित्रता के साथ करें! वाणी का स्वामी परमात्मा मेरी वाणी को पवित्र करें! वह सविता देव मुझे पवित्र करें। जैसे प्रत्येक स्थान पर प्रवेश कर अशुद्धि हटा शुद्धि करने वाली वाली सूर्य की किरणों के समान परमात्मा हमें ज्ञान के प्रकाश से पवित्रता प्रदान करें। आप ही पवित्रता–पति है स्वामी हैं। आपका ज्ञान पवित्र बनाने वाला है!आपके ज्ञान से पवित्रता को प्राप्त कर मैं जीवन में पवित्रता धारण कर सकूँ।

आगे कहा कि यदि ज्ञान जीवन को पवित्र नहीं बनाता तो वह भार होता है। मंत्रों पर जब हम चिंतन करते हैं, तो वह चिंतन हमारे जीवन में उतारकर हमें पवित्र बनता है।यज्ञ से ही सृष्टि चल रही है, जीवन चल रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परमपिता परमात्मा द्वारा यज्ञ की धारा को इस प्रकार ओत प्रोत किया गया है कि हम यज्ञ से दूर जाकर अपने जीवन को कभी भी पवित्र नहीं कर पाएंगे। इसलिए हम यज्ञ से कभी दूर नहीं हों। हमारे जीवन में कभी यज्ञ का विनाश ना हो। यजुर्वेद में यज्ञ का प्रतिपादन एवं वर्णन बड़े विस्तार से किया हुआ है जिससे हमारा जीवन यज्ञ से ओतप्रोत हो जाए। हम यज्ञ और सत्कर्मों को करने का संकल्प करें। यह शरीर यज्ञ के लिए है। मानव शरीर प्राप्त करके भी यदि यज्ञ नहीं कर पाए तो यह हमारे से जीवन की सफलता नहीं है।

पुनः 15 वे मंत्र **'पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन्पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रम्मऽआगन्। वैश्वानरोऽअदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्।।'**की व्याख्या करते हुए आचार्या जी ने कहा कि यह मंत्र पुनर्जन्म का बोध कराता है। पुनर्जन्म को सिद्ध करता है और जब पुनर्जन्म की स्मृति हमारे अंतःकरण में बनी रहती है तो हम बुरे कर्मों से बच्चे रहते हैं, अशुभ कर्म से बचे रहकर दुरित और दुखों से रक्षित होते हैं।

चतुर्थ अध्याय के 28वें मंत्र **'परि माग्ने दुश्चरितादबाधस्वा मा सुचरिते भज। उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ अन।।'** में की गई प्रार्थना को समझाते बतायाः हे ज्ञान स्वरूप परमात्मा! हमें पया दुश्चरित्र दुष्ट आचरण से रोकिए! मैं कभी दुष्ट आचरण में प्रवृत्त ना होऊँ!मुझे सदा चरण में स्थापित कीजिए!हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर! हमें सदाचरण में लगाओ दुराचरण से बचाओ!

किसी भी कार्य को करने से पहले परमपिता परमात्मा हमारे अंतर में एक प्रेरणा पैदा करता है कि यह कार्य करणी है अथवा नहीं है। उस प्रेरणा को यदि हम सुन पाते हैं तो निश्चित

रूप से हमें सदाचरण का ज्ञान हो जाता है। विश्वानी देव मंत्र के अर्थ में भद्र शब्द को दो तरीके से देखना चाहिए। पाणिनिकृत भद्र शब्द की परिभाषा में कल्याण और सुख दो चीज भद्र कहलाती है। बहुत सी चीजें सुख तो देती है किंतु कल्याण नहीं करतीं। जैसे कि ब्रह्म मुहूर्त में सोना सुख देता है किंतु कल्याणकारी नहीं है। तामसिक भोजन हमें अच्छा लगता है, स्वास्थ्य के प्रतिकूल भोजन भी सुख देता है, किंतु हमारे स्वास्थ्य के लिए कल्याणकारी नहीं है। इसलिए ऋषि ने इस विश्वानी देव मंत्र के अर्थ में कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ लिखा है। पदार्थ केवल सुख देने वाले मात्र होने से उनका ग्रहण नहीं करें,कन्तु कल्याणकारी होने से ही ग्रहण करें। ऐसे कार्यों से हमें सदाचार और कदाचार का विवेक पैदा हो जाता है। आनंद को प्राप्त कर अपने जीवन के साथ सदाचरण को प्राप्त करें और दुराचरण को दूर करते रहें।

29वें मंत्र'**प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु।।**'में भी यही बात कही है अर्थात्हम अहिंसक कल्याणकारी मार्ग का अनुसरण करें! इससे हम सभी प्रकार के द्वेष भावनाओं से दूर हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति सब प्रकार के ऐश्वर्यों को जीवन में प्राप्त करता है। मन, वचन या कर्म से किसी को दुख देते हैं तो वह हिंसा है। मनुष्य अपने जीवन में कुछ भी शुभ प्राप्त करता है या सुख प्राप्त करता है तो अहंकार आ जाता है और दूसरे को आगे बढ़ते देखते हैं तो द्वेष हो जाता है। राग, द्वेष और अहंकार तीन चीज ऐसी है जीवन में जो अधःपतन की ओर ले जाती है।

यजुर्वेद के पाँचवें अध्याय के 13वें मंत्र '**ध्रुवो सि पृथिवीं ँह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं ँहाच्युतक्षिदसि दिवं ँहाग्नेः पुरीषमसि।।**' की व्याख्या करते हुए कहा कि यज्ञ स्थिर है। यज्ञ की स्थिरता या निश्चलता का जो विचार करते हैं तो पाते हैं कि जो आहुतियाँ यज्ञ में दी जाती है वे उत्तम परिणाम को देने वाला होती हैं। यज्ञ में मंत्रों का चिंतन करते हुए यदि हम आहुति देते हैं तो चिंतन से मन में पवित्रता बनेगी जो एक आंतरिक लाभ है! और बाहर में जो भाव द्रव्य अग्नि में हम आहूत करते हैं उससे वातावरण में पवित्रता होती है। यह लाभ सदा होता है अतः यज्ञ निश्चल या स्थिर होता है। ऐसा विश्वास जब हमारे भीतर बन जाता है तो हमारे जीवन में कभी भी यज्ञ छूटता नहीं है।

पाँचवें अध्याय के ही २८वें मंत्र '**ध्रुवासि ध्रुवो यँयजमानो स्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् । घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य च्छदिरसि विश्वजनस्य च्छाया।।**'में आए प्रजा शब्द की व्याख्या करते आचार्याजी ने बताया कि वेद में संतान के लिए प्रजा शब्द का प्रयोग है। अर्थात् संतान को प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न किया जाए। आजकल तो मां–बाप को पता ही नहीं चलता कि कब गर्भ में संतान आ जाती है। ऐसी वासना में डूबने से अनायास प्राप्त संतान प्रजा नहीं है। बल्कि गर्भ से पहले इसकी तैयारी करके बड़ा उपक्रम करके गर्भाधान संस्कार के द्वारा दिव्या भावों को मन में पैदा करके जो दिव्य संतान उत्पन्न करते हैं, वह प्रजा होती हैं। पश्चात् पुंसवन व सीमंततोन्नयन आदि संस्कारों से प्रकाशित बनाया जाता है। माता–पिता और आचार्य के यहाँ उसके सभी संस्कार किए जाते हैं। तब वह ऐसे प्रजा बनती है जिसको देखने के लिए देवता धरती पर आते हैं।

मंत्र का सार बताते आचार्याजी ने कहा कि प्रजा और पशुओं के द्वारा बड़े–बड़े यज्ञ करके

द्युलोक और पृथ्वीलोक को यज्ञ के लाभों से भर दो!तुम ऐश्वर्यों की छाया हो!पूरे विश्व के आश्रय बन जाओ!

पंचम अध्याय का अंतिम मंत्र **'द्यामा लेखीरन्तरिक्षम्मा हिंसीः पृथिव्या सम्भव । अयँ हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय । अतस्त्वन्देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयँ रुहेम।।४३।।'** बहुत सुंदर संदेश देकर हमें झकोर रहा है। मंत्र कहता है: हे मनुष्य! उसे द्युलोक को हिसित मत कर, मत बिगाड़! क्योंकि उसका प्रतिफल तुझे ही मिलेगा!जड़ जगत खराबी की अनुभूति नहीं करता है, हमें ही वह अनुभूति करनी होगी। इसलिए इन लोक लोकांतरों को मत बिगाड़! क्योंकि यह बिगाड़ तेरे लिए दुखदाई है! यदि इस पृथ्वी के साथ तू निवास चाहता है, इस पर तू रहना चाहता है तो इन लोकों की तू रक्षा कर! महान सौभाग्य के लिए, तू ऐश्वर्यों का अभिलाषी है, तो, इस पृथ्वी के सारे पदार्थ ऐश्वर्यों को प्रदान करते हैं! किंतु यदि तू भी द्युलोक और अंतरिक्ष लोक को हिंसित नहीं करेगा, नहीं बिगड़ेगा, प्रदूषण नहीं करेगा तो तेरा भी निश्चित रूप से महान सौभाग्य उदय होगा। इन लोकांतरों की रक्षा तुझे यज्ञ के द्वारा करनी ही पड़ेगी! जितने भी सैकड़ों शाखाओं में, हजारों शाखों में फूलने और फलने वाले वृक्ष और वनस्पतियाँ हैं, उनका बड़ा पालन तू करेगा तो हम सभी बढ़ेंगे। अर्थात् तू वृक्ष और वनस्पतियों को बढ़ाएगा तो तू भी बढ़ेगा,द्युलोक और पृथ्वी लोक को बढ़ाएगा तो तू भी बढ़ेगा ,तेरा महान सौभाग्य बढ़ेगा।

इन मंत्रों की व्याख्या के पश्चात् पूर्णाहंति प्रकरण संपन्न कराया।

यज्ञोपरांत व्याख्यान

यज्ञोपरांत अपने व्याख्यान में पद्मश्री आचार्य सुकामा जी ने अथर्ववेद काण्ड 13; सूक्त 1; मन्त्र 59**'मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः। मान्त स्थुर्नो अरातयः।।'** । से अपने व्याख्यान का आरंभ किया और बताया कि प्रत्येक मनुष्य जीवन में दो प्रकार के ऐश्वर्यों को चाहता है। किन्तु अधिक प्रयास उसका भौतिक ऐश्वर्य के लिए होता है। वैदिक परंपरा में भौतिक ऐश्वर्य के साथ–साथ आंतरिक ऐश्वर्य, जो शांति का है, जो आनंद का है, जो एक आत्मिक उन्नति का है, उस ऐश्वर्य की भी कामना हमें करनी चाहिए। सोम प्रथम ऐश्वर्य को कहते हैं। जो कुछ भी ऐश्वर्य उत्पन्न किया जाता है, उसे हम सोम नाम से कह सकते हैं। हम सोम ऐश्वर्य के अभिलाषी जन वैदिक मार्ग से दूर नहीं जावें। वैदिक पथ एक मात्र पथ है जिस पर चला जाता है। हम भी सदा वैदिक पथ के अनुगामी बनें। वैदिक पथ में ईश्वर, जीव, प्रति–तीनों की सत्ता को स्वीकार करके इन तीनों के सत्य स्वरूप को समझना होता है, जिससे हम इन तीनों के साथ,कि ईश्वर के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, स्वयं अपनी आत्मा के प्रति क्या कर्तव्य है और प्रति से भी, हमें प्रति के साथ क्या व्यवहार करना है। यदि हम इन तीनों के स्वरूप को सही ढंग से समझेंगे तो उनके साथ संगतिकरण कर पाएंगे। किसी वस्तु के गुण कर्म स्वभाव जानकर ही उसे संगति करके उससे लाभ उठा पाते हैं अन्यथा हमें हानि भी हो सकती है। यदि ईश्वर, जीव और प्रति के सच्चे स्वरूप को समझ कर तदनुसार व्यवहार करेंगे तो हम इस दैवी पथ पर चल रहे हैं। परमात्मा प्रदत्त वेदज्ञान का जब हम अनुगमन करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, रक्षा करते हैं तो हम

वेद मार्ग के अनुगामी बनते हैं। इसी तरह यदि हम पुनर्जन्म को मानते हैं तभी हम इस जन्म में सुख में संलग्न रह सकते हैं। ईश्वर निराकार है, आत्मा निराकार है, ये दोनों साकार नहीं है। इन सारे सत्य सिद्धांतों को यदि हम समझ कर उनका प्रचार प्रसार करके समाज को भी वैसा बनाने का प्रयास करते हैं, समस्त आर्य वैदिक सिद्धांतों को सबके पास पहुँचाते हैं तो हम वैदिक मार्ग पर निश्चित रूप से चल रहे हैं। वैदिक मार्ग पर चलते हुए मात्र अपने तक सीमित नहीं रहे जा सकता!मनुष्य सामाजिक प्राणी है! उसे अपने व्यक्तित्व को वैदिक बनाने के साथ–साथ अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व को भी वेद के मार्ग पर चलाना है। यहाँ पर वयं शब्द का उपयोग किया है अर्थात् हम सभी उसी मार्ग के अनुगामी बनें। व्यक्ति से लेकर के विश्व तक हमें वेद मार्ग की स्थापना करती है। आर्यसमाज का जो आदर्श वाक्य**'ण्वन्तो विश्वमार्यम्'**है, इस मंत्र के अंदर भी विश्व को आर्य बनाने के अर्थ के साथ–साथ एक और अर्थ पर विचार करना चाहिए 'विश्वम् आर्यं' का तात्पर्य'स्वयं को समग्र रूप से आर्य बनाते हुए' चलें! फिर समस्त संसार को बना सकें। पहले स्वयं को सर्वांगीण आर्य बनाने से हम आदर्श जीवन जी पाते हैं, जिससे लोग हमारा अनुकरण करने के लिए आकर्षित होते हैं। प्रत्येक मनुष्य को स्वयं के साथ साथ विश्व का भी कल्याण करना होता है। इसीलिए महर्षि दयानंद ने आर्यसमाज की स्थापना करते हुए विश्व का कल्याण उद्देश्य में रखा। महर्षि के उसे भाव को ग्रहण करते हुए हम इस परंपरा को लेकर चलें कि हम भी वैदिक मार्ग के अनुयाई बनें। इस मंत्र के दूसरे चरण में कहा है कि है परमात्मा मैं यज्ञ से दूर नहीं रहूँ। यज्ञ मेरे जीवन में ऐसे ओतप्रोत होना चाहिए कि जिसमें जीवन में प्रतिपद में, प्रत्येक कर्म में यज्ञ को प्राप्त कर सकूँ।

समस्त वैदिक संसति को यदि हम एक शब्द में कहें तो वह एक शब्द 'यज्ञ' है। संपूर्ण वैदिक संस्कृति का उपसंहार यज्ञ है। सारे यज्ञों का उपसंहार पंचमहायज्ञ में और पंचमहायज्ञों का उपसंहार यज्ञ शब्द में है। मानव जीवन में यज्ञ की महत्ता बताने के लिए यक्ष युधिष्ठिर संवाद से उदाहरण देते हुए आचार्या जी ने यक्ष का युधिष्ठिर से किया प्रश्न बताया कि इंद्रियों से सब कुछ अनुभव करते हुए, बुद्धिमान होते हुए, लोक में पूज्य भाव प्राप्त करते हुए, सभी प्राणियों के द्वारा जिसकी बातों को मान्यता प्राप्त प्रदान की जाती है; यह सब होने पर भी, जबकि वह श्वांस भी ले रहा है; फिर भी ऐसा कौन है जो नहीं जीता है? इस प्रश्न का उत्तर युधिष्ठिर ने देते हुए कहा–ऐसा व्यक्ति यदिपंचमहायज्ञ नहीं करता है, तो वह श्वांस लेते हुए भी मृतक के समान है, जीता नहीं है। आचार्याजी ने यक्ष शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए यक्ष को ऐसा धर्मप्रचारक बताया जो वन में जलाशय के किनारे तप करता हुआ आगंतुकों को प्रश्न पूछकर उनके ज्ञान की थाह लेता है और उनकी जलपान भोजनादि से सहायता करता हुआ उन्हें धर्म के मार्ग पर प्रेरित करता है।

मंत्र के तीसरे चरण की व्याख्या करते हुए आचार्या जी ने कहा कि इसमें परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मा! हमें यज्ञ से दूर मत कर! यदि बड़े–बड़े यज्ञों का संपादन हम नहीं कर पाएँ, तो पंचमहायज्ञों का संपादन अवश्य करें। मेरे जीवन में जो भी अदानशीलता है, उसे दूर करें। ज्ञान, धन, भौतिक ऐश्वर्य जो भी है, उसको भी मैं दूसरों को दान अवश्य करूँ। अकेले भोगना करूँ। हमारे पास जो कुछ भी है वह दूसरों से प्राप्त किया हुआ है। इसी प्रकार

हमने जो अर्जित कर लिया है, हम भी दूसरों को प्रदान करें। मात्र लेने की भावना एक दिन हमें नीचे अर्थात और पतन की ओर ले जाती है। काम क्रोध आदि विषय विकार हमारे शत्रु हैं। किसी को हम मन, वचन, कर्म से कष्ट पहुँचाते हैं तो वह हमारा एक दुष्टभाव है। हम ऐसे भावों को नहीं रखें। जब हम वैदिक मार्ग पर चलते हैं और उसी के साथ–साथ जब हम अपने जीवन के अंदर यज्ञों को प्राप्त करते हैं तो उसका यह निश्चित परिणाम होता है कि हमारे भीतर अरातिभाव अर्थात् नहीं देने के भाव टिक नहीं पाते! यज्ञ करने वाले तो शुद्ध और पवित्र बनते हैं! उनके जीवन में सुकर्म की स्थिति बन जाती है!

व्यक्ति सभी प्रकार के ऐश्वर्या का अभिलाषी होता है। छह प्रकार के ऐश्वर्य बताए गए हैं।**'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रीयः। ज्ञानवैराग्योश्चैव सन्नाम भगवान्नीह।।'** अर्थात् शक्ति, ज्ञान, सौंदर्य, कीर्ति, ऐश्वर्य और वैराग्य रूपी ऐश्वर्य!

दरिद्रता का विधान वेद में नहीं है। **'वयं स्याम पतयो रयीणाम्'**इस मंत्र में कहा है–हम धन ऐश्वर्य के स्वामी बनें। किंतु इस धन ऐश्वर्य में से दूसरों का भाग अवश्य निकले।

ज्ञान जब तक जीवन में नहीं आएगा, तब तक हमारे कर्म सही नहीं होंगे। ज्ञान का साधन स्वाध्याय भी है जिसे परम तप कहा है और स्वाध्याय से ही ज्ञान बढ़ता है। जितना ज्ञान का उत्कर्ष होता है, उतनी ही कर्म में पवित्रता बढ़ती जाएगी। ज्ञान के साथ ही सभी कर्मों का अनुष्ठान किया जाता है। ज्ञानपूर्वक कर्म करते हुए बहुत सारे व्यवहारों को साधते हुए, उन पदार्थों का प्रयोग करते हुए, हमारे भीतर आसक्ति का भाव आ जाता है जो हमें अपने लक्ष्य से दूर हो जाता है। व्यक्तियों के साथ, चेतन और जड़ जगत के साथ हमारी आसक्ति बन जाती है। हमारे साधनों के प्रति हमारी आसक्ति बन जाती है। मैं, मेरा का संबंध बन जाता है, जो इतना घनिष्ठ हो जाता है कि जब वह चीज छूट जाती है तो ऐसा लगता है कि हम स्वयं छूट रहे हैं। इसलिए वैराग्य अत्यंत आवश्यक है, कि यह सब साधन है, साध्य नहीं है। प्रत्येक जड़ चेतन के साथ, प्रत्येक छोटी से छोटी वस्तु के साथ, छोटी से छोटी घटना के साथ हमें इन बातों का विचार करना पड़ता है, तब यह वैराग्य को धारण करने का महत्व पता चलता है। हम सभी प्रकार की इच्छाओं, ऐश्वर्यों को प्राप्त करें! किंतु, उनके पीछे सदा हम वैदिक धर्म को अपने साथ रखें, जिससे हमारा जीवन पवित्र बनेगा।

ध्वजारोहण

यज्ञोपरांत सभी विद्वान, न्यास के अधिकारी,आर्यसमाजों व प्रतिनिधि सभाओं के पदाधिकारी, सन्यासी एवं वानप्रस्थ, माताएं/–बहनें और आर्यजन ध्वजारोहण के लिए न्यास परिसर स्थित ब्रह्मर्षि विरजानंद उद्यान में पहुँचे। उद्यान में विश्ववारा आर्ष कन्या गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों ने राष्ट्रप्रार्थना का सस्वर पाठ किया, इसका का भाषा में अनुवाद भी गाया। इसके बाद पद्मश्री आचार्या सुकामाजी एवं न्यास के कार्यकर्ता प्रधान श्री विजयसिंह भाटी ने ध्वजारोहण किया। एवं गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों ने 'जयति ओम् ध्वज व्योम विहारी' गाया।

प्रथम दिवसः प्रातःकालीन भजन-प्रवचन सत्र

ध्वजारोहण करके पांडाल में भजन प्रवचन उपदेश का क्रम आरंभ हुआ। आर्य जगत के सुप्रसिद्ध भजनोपदेशक पंडित नरेशदत्तजी ने सुमधुर स्वरों में मंत्रोच्चार के बाद 'उठ अब तो ईश्वर का गुणगान कर ले, प्रभु प्यारे प्रीतम का अब ध्यान कर ले३' से अपने संगीत सरिता का प्रवाह आरंभ किया। इसे आगे बढ़ाते हुए 'क्या कहें क्या भक्त पाता, है प्रभु के ध्यान में... कुछ अलौकिक रस मिले जब, मन लगे भगवान मेंऽऽऽ गाकर प्रभु के ज्ञान की कसौटी प्रस्तुत की। सब कुछ प्राप्त करने के बाद भी परमात्मा का धन्यवाद नहीं करने वालों को तज्ञता पर विचार करने का आदेश दे 'सुनो ज्ञान गंगा की धारा प्रबल हैऽऽ इसमें नहाना ना इतना सरल है...' से चेतावनी देदी कि ज्ञान की बात सुनते समय मन, बुद्धि और आत्मा का संगतिकारण कर लो। पण्डितजी ने तीर्थ स्नान की व्याख्या करते हुए तीर्थ का मतलब विद्या और स्नान का मतलब स्नातक बनने से बता कर मार्गदर्शन किया।

<u>**पद्मश्री आचार्या सुकामा जी**</u> ने न्यास के कार्यकर्ता प्रधानजी के विशेष अनुरोध पर संगठन और संगतिकाण पर केंद्रित अपना बहुत ही सुंदर और सन्मार्गदर्शक व्याख्यान प्रस्तुत किया।**'यो भूतं च भव्यं च सर्व यश्चाधितिष्ठति। स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।।** अथर्ववेद के इस मंत्र से अपना व्याख्यान आरंभ कर बतायाः –

हम सब यहाँ उन ऋषियों की पवन परंपरा में जीवन यात्रा को आगे बढ़ा रहे हैं। उन ऋषियों के जो प्रतिनिधि ऋषि है, जिन्होंने ब्रह्मा से जैमीनि पर्यन्त मुनियों की टूटी हुई परंपरा को जोड़ा और ऋषि परंपरा का दर्शन कराया। हमारा सौभाग्य है कि महर्षि दयानंद सरस्वती एक ऐसे युगदृष्टा हमारे मार्गदर्शक हैं जिनकी दृष्टि सर्वांगीण दृष्टि है, जिनका चिंतन बहुत व्यापक है। एक वाक्य में कहें तो महर्षि समग्र क्रांति के सूत्रधार हैं। कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं जहॉ तक उन्होंने क्रांति नहीं की और उस क्रांति में भी उन्होंने सब जगह सर्वत्र मूल को पकड़ा और मूल में भी उन्होंने नगरों में, महानगरों में, नदियों के तट पर, जंगलों में, धर्माधिकारियों के मठों में–सर्वत्र घूम कर यह समझने की कोशिश की कि मैं समस्त समाज को जो संदेश देना चाहता हूँ, जिससे यह सारा समाज संगठित किया जा सकता है, एक हो सकता है–उसमें उन्होंने पाया कि किसी भी मत सम्प्रदाय को मानने वाले भले ही हो, किंतु वेद के विषय में सब परम प्रमाण मानते हैं। यह पृथक बात है कि वेद की व्याख्या के विषय में उनके मतभेद हैं। उनके ज्ञान में अंतर है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है। आर्ष परंपरा और इतर परंपरा में भी सभी भाष्यकारों ने, चाहे वह पूर्व के विद्वान हो चाहे पाश्चात्य, वेद को तो ईश्वरीय या अपौरुशेय ज्ञान मानते ही हैं। महर्षि ने इस चीज को समझा और एक नारा भी दिया–**'वेदों की ओर लौटो!'** महर्षि के शास्त्रार्थ हों या व्याख्यान, वेद को स्वप्रमाण मानकर वे अपनी बात को रखते थे और सभी उनकी बात को स्वीकार भी करते थे। अंधपरंपरा वाले लोगों की दृष्टि विस्तृत नहीं होने से उन्होंने बहुत से अन्य ग्रन्थों को भी वेद मान लिया, जिससे महर्षि को उनके सामने संघर्ष करना पड़ा और वेदों की अपौरुषेयता सिद्ध करनी पड़ी। महर्षि अपने उद्देश्य में बहुत सफल हुए। वे मौलिक चिंतन के साथ में इतने आगे बढ़े कि आज वैदिक मान्यताओं में आर्यसमाज की मान्यता अपना बहुत अच्छा स्थान रखती है। महर्षि ने अनेक क्षेत्रों में कार्य करते हुए आर्यसमाज की स्थापना करने का जो विचार

बनाया, इसमें उनका कोई अलग मत संप्रदाय स्थापित करने का विचार तो नहीं ही था, जैसा कि उन्होंने स्वयं भी लिखा है। किंतु वेद को आधार बनाकर 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल प्रथम नियम में ईश्वर को बताया। दूसरे नियम में ईश्वर का स्वरूप बतलाया और तीसरे नियम में आर्यों का प्रमुख परम धर्म वेद का पढ़ना-पढ़ना और सुनना-सुनना बताया। समाज के नामकरण में 'आर्य' शब्द को पहले रखा। अर्थात् इस समाज में श्रेष्ठ व्यक्ति ही हों जो संगतिकरण के साथ आगे बढ़ें। महर्षि पाणिनि के शब्दों में यज्ञों की परिभाषा देवपूजा, संगतिकारण और दान होती है। विशेष बात यह है कि देवपूजा का फल भी संगतिकरण है और दान का फल भी संगतिकरण है। संगतिकरण दोनों के बीच की धुरी है। जब देते हैं तो संगठन बन जाता है। जब देवपूजा करते हैं तो अंतःकरण शुद्ध होने से संगतिकरण बन जाता है। हम दूसरों को सम्मान दें, पद दें, प्रतिष्ठा दें, स्थान दें, ज्ञान दें! जो कुछ भी हमारे पास है, उदारता के साथ हम दूसरों को दें, तो सब हमारे साथ आ जाएंगे। यही यज्ञ है।

देने से संगतिकरण बनता है और अपने आप लेने से संगठन टूटता है। देव पूजा का मुख्य तात्पर्य परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना और उपासना है। जब हम परमपिता परमात्मा को मान कर सच्चे आस्तिक बनते हैं तो हम स्वयं को सहज, सरल और विनम्र पाते हैं, पवित्र पाते हैं। और जब ये सहजता, सरलता और विनम्रताजीवन में आते हैं तो सबसे संगतिकरण बनते हैं। संगतिकरण नहीं बनने का मुख्य कारण यह है कि हम हर चीज में स्वयं को आगे रखते हैं और दूसरों को पीछे रखते हैं। संगठन की धुरी संगतिकरण है। नदी दोनों किनारो के संगतिकरण से आगे बढ़ती है तो सारी धरती को सस्य-श्यामला बना देती है। जीवन में हम इहलौकिक और पारलौकिक और अपने हृदय दोनों को साथ लेकर चलते हैं तो हम धर्म की प्राप्ति करते हैं। **वेदः स्मृतिः सदाचार स्वस्य च प्रियमात्मनः द्य एतच्चतुर्विधं माहुः साक्षातद्धर्मस्य लक्षणम् ।।** (मनु – 2/12) को उद्धृत करते उन्होंने कहा कि तब जीवन में वेद स्मृति सदाचार और अपनी आत्मा में जैसा चाहते हैं वैसा दूसरों के साथ बताओ करेंगे धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। (मनुस्मृति ६.९२) को उद्धृत कर कहा कि मनु महाराज ने दश लाक्षणिक धर्म को इन चार चीजों **वेद, स्मृति, सदाचार और आत्मवत् सर्वभूतेषु**' में बांध दिया है।

महर्षि ने विद्वान से भी ज्यादा धर्मात्मा को माना है। जो वेद की शिक्षा को अपने आचरण का विषय बना लेता है तो वह धर्मात्मा होता है। किंतु यदि हम सारी विद्या प्राप्त करके भी उसके अनुसार आचरण नहीं करते तो वह विद्या हमारे लिए भार हो जाती है। **सदाचारी** का तात्पर्य धर्मात्मा लेना चाहिए। जिसका आत्मा धर्म से युक्त उत्तम हो गया हो, वह धर्मात्मा है! वह संगतिकरण कर सकता है! वह धर्म के प्रकाश में अपने चरित्र, विचार अके साथ ही व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों को देखता सकता है, वह धर्मात्मा है। चौथे लक्षण की व्याख्या करते कहते हैं-जो मेरी आत्मा को अच्छा लगता है वैसा ही बर्ताव में दूसरों के साथ करूँ। यह भी संगतिकरण बनता है। संगतिकरण का अभाव बहुत बड़ी समस्या है। इसके न होने से परिवार टूट रहा है, समाज टूट रहा है, समस्याएं आती हैं। राजनीति को राजधर्म होना चाहिए था ताकि धार्मिकता संगतिकरण को प्रेरित कर सके। किंतु राजनीति में संगतिकारण नहीं होने से गड़बड़

हो रही है। महर्षि ने भी सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में राजनीति नही, राजधर्म की व्याख्या की है, महर्षि मनु ने भी राजधर्म का उपदेश दिया है। आज राजनीति वित हो रही है और राजधर्म नहीं माना जाता है। संगतिकरण के लिए महर्षि मनु द्वारा बतायी गई धर्म की इस परिभाषा में निहित चार कर्तव्य बहुत महत्वपूर्ण है। संगठन का तात्पर्य यही संगतिकरण है। संगतिकरण नहीं होने से संगठन सक्षम नहीं हो पाए। संगतिकरण करेंगे तो संगठन बलशाली होगा! संगतिकरण रूपी यज्ञ न होने से परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व में विघटन होता जाएगा।

महर्षि वेदव्यास ने इसी को धर्म की परिभाषा के साथ में जोड़ते हुए कहा महाभारत के स्वर्गारोहणपर्व में कहा है– 'ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे। धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ।।१८।५।४६।। अर्थात् मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार–पुकार कर कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता। धर्म से मोक्ष तो सिद्ध होता ही है; अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं, तो भी लोग धर्म का सेवन क्यों नहीं करते ?

श्री विजय सिंह भाटी: महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन न्यास के कार्यकर्ता प्रधान श्री विजयसिंह भाटी ने अपने संबोधन में अपने वक्तव के आरंभ में पद्यात्मक रूप से न्यासियों को सफल, सक्षम और सब समस्याओं से पार पा लेने की सामर्थ्य प्रदान करने की प्रार्थना की। संगठन के लिए अच्छी बातों को ग्रहण करना पड़ेगा और जो जो बात ठीक नहीं है उन्हें त्यागना पड़ेगा। उदाहरण के द्वारा उन्होंने संगठन में सब लोगों द्वारा कार्य में एकरूपता और सामंजस्य बनाने का आवाहन किया, ताकि कार्य सुंदर लगे। उन्होंने न्यासियों से और भी मन लगाकर काम करने का आह्वान किया। अंत में ईश्वर स्तुति का एक स्वरचित गीत गाया।

प्रो.श्री विनयजी विद्यालंकार:–राजकीय महाविद्यालय चंपावत उत्तराखंड के प्राचार्य एवं उत्तराखंड आर्य प्रतिनिधि सभा के पूर्व प्रधान श्री विनय जी विद्यालंकार ने अपने उदबोधन का आरंभ अथर्ववेद काण्ड 1; सूक्त 1; के मन्त्र 3 'इहैवाभि वि तनूभे आर्त्नी इव ज्यया। वाचस्पतिर्नि यच्छतु मय्येवास्तु मयि श्रुतम्।।' के उच्चारण के साथ करते हुए एक विशेष बात कह कर सोताओं का ध्यान खींचा कि लोग कहते हैं कि ज्ञान से सुख प्राप्त होता है। लेकिन, मैं आपको कहता हूँ कि ज्ञान से दुख प्राप्त होता है। वेद शब्द में विद् ज्ञाने धातु है और वेदना में भी। किन्तु वेदना का अर्थ दुख और पीड़ा है व वेद का अर्थ है ज्ञान। किन्तु ज्ञान का प्रारंभिक स्तर दुःख का बोध कराता है। हमारे सिर में दर्द का बोध होता है, तो दुख होता है। दर्दनाशक देते ही पीड़ा के ज्ञान का अंत हो जाता है तो मनुष्य सुखी हो जाते हैं।

महाराज भर्तहरि के नीति शतक के एक श्लोक **'अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः। ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति।।'** को उद्धृत कर कहा कि जो कुछ नहीं जानता ऐसे अबोध व्यक्ति को सरलता से समझाया जा सकता है, विशेषज्ञ या बुद्धिमान् को और भी सरलता से समझाया जा सकता है। किन्तु संसार में एक श्रेणी ऐसी है 'ज्ञान – लव – दुर्विदग्ध' अर्थात् अधकचरे ज्ञान से ही अपने को पण्डित मानने वाले मनुष्य को चारों वेदों का ज्ञाता ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता। अपने कथन को सिद्ध करने के लिए श्री विद्यालंकरजी ने महाराज भरतरी का ही एक और श्लोक उद्धृत किया: **यदा किंचिज्ज्ञोहं द्विप इव मदान्धः समभवं, तदा सर्वज्ञोस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः। यदा**

किन्चित्किन्चिद्बुधजनसकाशादवगतं, तदा मूर्खोस्मीति ज्वरइव मदो मे व्यपगतः।।

अर्थात् जब मैं थोडा बहुत शिक्षित हो गया तो मेरें मन में यह गर्व उत्पन्न हो गया कि मै सर्वज्ञ (सब कुछ जाननेवाला) विद्वान हो गया हूँ। तब मैं एक मदान्ध हाथी के समान व्यवहार करने लगा। परन्तु जब मैं धीरे धीरे विद्वानों के संपर्क में आया तब मुझे विदित हुआ कि मैं तो अभी भी मूर्खही हूं और विद्वान होने का मेरा गर्व वैसे ही दूर हो गया, जैसे औषधि सेवन से ज्वर दूर हो जाता है।।

वामपंथी दिनेश वार्ष्णेय द्वारा एक टीवी चौनल में वार्तालाप के दौरान महर्षि दयानंद द्वारा सत्यार्थप्रकाश में सनातन का खण्डन करने का आरोप लगाया। इस वार्तालाप में उपस्थित विश्व हिंदू परिषद के राष्ट्रीय प्रवक्ता एवं आर्यसमाजी के श्री विनोद बंसल ने डंके की चोट पर कहा और पूछा कि सत्यार्थप्रकाश में कहाँ सनातन का खंडन महर्षि दयानंद ने किया है, बताइए! चुनौती दी! दिनेश वार्ष्णेय जवाब नहीं दे पाए।

किंचित ज्ञान में वेदना होती है और ज्ञान बढ़ता जाता है तो सुख प्राप्त होता है और तब मनुष्य कह उठता है:'**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।।** यजुर्वेद ३१/१८मैंने उसे परम पुरुष को जान लिया है जिसको जानना ही वस्तुतः जानना है।

विनयजी ने बताया कि हमारा पहला जीवनसाथी हम स्वयं है और आत्मा के उद्धार के द्वारा स्वयं का उद्धार हमें करना है। ज्ञानी लोगों की संगत करके जब मनुष्य यह अनुभव करने लगता है कि मुझे बहुत कुछ जानना है और उसका गर्व चला जाता है। यहीं ज्ञान की यात्रा का आरंभ है।

संगठन पर बात करते हुए श्रीविद्यालंकार जी ने कहा कि जो लगातार प्रधान रहे वह नाकारा होता है क्योंकि पिता वह कहलाएगा जिसके संतान हो और संगठन का काम करते हुए तीन वर्ष में जो दूसरी पंक्ति तैयार कर देता है, वह वस्तुतः पिता और आदर का पात्र होता है। किन्तु जहाँ सभा में लगातार एक ही व्यक्ति बैठा हुआ है, इसका अभिप्राय यह है कि या तो उसने अपने समान योग्य को तैयार नहीं किया और या किसी को योग्य समझा नहीं। सुकामा जी के कथन को आगे बढ़ाते हुए कहा कि सबको सबको ज्ञान, धन, सम्मान इत्यादि सब देकर योग्य भी बनाओ। महर्षि पहले ऐसे ऋषि है।

ऋग्वेद मण्डल 1; सूक्त 22; मन्त्र 19'**विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा।।**'को प्रस्तुत कर इसके प्रथम चरण का अर्थ करते कहाः हे जीवो! (विष्णोः) व्यापकेश्वर के किये (कर्माणि) जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि दिव्य कर्मों को (पश्यत) तुम देखो! अधिकांश ने संसार को देखकर इसे असार और दुःखों का सागर बताया। किन्तु महर्षि दयानंद पहले ऋषि थे जिन्होंने संसार को दुखमय नहीं बताया। वेदों से प्रेरणा लेकर ही उन्होंने कहा कि **संसार सुख का साधन है दुखों का सागर नहीं है।** संसार के जिन लोगों ने ईश्वर को कर्ता नहीं माना, उसने ईश्वर को नहीं जाना। दूसरे नियम के अंत में महर्षि ने परमात्मा को सृष्टिकर्ता बताया है। यह सृष्टि ईश्वर का कर्म है। विष्णु शब्द विश्लृ व्याप्तौ धातु से परमात्मा शब्द सिद्ध होता है। शतपथ ब्राह्मणकार कहते हैं–**यज्ञो वै विष्णुः।** जिस प्रकार

यज्ञकर्म में पूर्णता है, उसी प्रकार परमात्मा के कर्म में भी पूर्णता है। मंत्र के पहले तीन शब्द यही कहते हैं। एक कुतर्की व्यक्ति ने प्रश्न किया कि आर्यसमाजी सब लोगों को समान कैसे बता सकते हैं? वह कोयला लेकर आया और कहा कि इसे सफेद बना दो। विद्यालंकरजी ने उसकी चुनौती स्वीकार कर कहा कि तुम्हारे तरीके से काला कोयला सफेद नहीं होगा, हमारे तरीके से होगा। कोयला इकट्ठा करके अग्नि जलाओ! जलने के बाद वह श्वेत हो जाएगा! आवश्यकता मानवीयता की अग्नि को जलाने की है! वेदज्ञान की ज्योति जगाने की है! मनुष्य सबको समानता के भाव से देखने लगेगा! महर्षि ने जो ज्ञान की ज्योति व विज्ञान हमें दिया है, महर्षि की २००वीं जयंती मना रहे हम लोग उसे जन–जन तक पहुँचाएँ।

पौराणिक कहते हैं कि ब्रह्मा सृष्टि का पालन करके अलग हो गए! फिर पालन के लिए विष्णु आए व पालन करके अलग हो गए! फिर प्रलय करने के लिए शंकर आए। सैकड़ों वर्ष पौराणिक आपस में लड़ने लगे और आज भी लड़ते हैं। महर्षि दयानंद की महिमा है कि उन्होंने 'वही ब्रह्मा है, वही विष्णु है, वही महेश है' का नाद गूंजायमान किया। उस महर्षि के सर्व व्यापक परमात्मा विष्णु को देखो! वेद के शब्द 'पश्य' गहन दृष्टि का, दार्शनिक दृष्टि का आह्वान करता है कि यह संसार परमात्मा ने बनाया है और यह संसार साधन के रूप में है। सृष्टि परमात्मा की करनी है। जो संसार के साधन को साध्य मानता जाए, ऐसा ज्ञान दुखदायक होता है। हाँ,!जो साधन को साधन और साध्य को साध्य बताए, ऐसा संपूर्ण ज्ञान सुखदायक होता है। यही मंत्र का प्रथम पद कहता है। जिस प्रकार से महर्षि व्यास ने देखा,महर्षि जैमिनि ने देखा, महर्षि कणाद ने देखा और महर्षि दयानंद ने देखा–उस दृष्टि को प्राप्त करने के लिए सब चर्चाएं और कार्यक्रम है। हम इस कार्यक्रम से वह दृष्टि प्राप्त करें! उस दृष्टि से प्राप्त आस्तिक्य उस सीमा तक जाना चाहिए कि कठिन से कठिन परिस्थिति आने पर भी उस परम सत्ता का सानिंध्य बने रहना चाहिए।

मिथ्या दृष्टि यथा 'ब्रह्मसत्य जगत मिथ्या' हजारों वर्षों तक चला, देश और विश्व को रसातल में ले गया। भारत से इतर भूगोल में उपजे मतों का मात्र बत्तीस सौ वर्षों का इतिहास है जो परमात्मा को हिंसक मानने और धरा पर पाशविक शक्ति ही राज करेगी की मान्यता से आरंभ होता है। इस मान्यता के बारह सौ वर्षों बाद ईसा कहता है कि परमात्मा प्रेम सिखाता है। बाइबिल दो भागों में बंट गई। पुनः असहिष्णुता और हिंसा का दौर इस्लाम के रूप तथाकथित धार्मिक मान्यताएँ विज्ञान से दूर हो गई। वैज्ञानिक दृष्टि वाले लोग धर्म को अफीम और विश्व का विनाशक बताने लगे तो धार्मिक लोग विज्ञान को नास्तिक और विश्व का विनाशक बताने लगे। हजारों वर्ष पश्चात् महर्षि दयानन्द ऐसे महापुरुष हुए हैं जिन्होनें एक नयी दृष्टि प्रदान की जो धर्म और विज्ञान के बीच सेतु का कार्य करती है। उन्होनें घोषित किया कि ईश्वर आस्था के साथ तर्क का भी विषय है और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है। वेद को परमात्मा का ज्ञान महर्षि के वेदभाष्य से ही सिद्ध किया जा सकता है। महर्षि की इस दृष्टि को विधर्मी भी मानने लगे हैं। अतः हम दूषित दृष्टि के पाशों से बचें और व्रतों के बंधन लगाएँ। सबका कल्याण होगा।

शान्तिपाठ और जयकारों से समाप्त सत्रोपरांत सभी जन ऋषिलंगर के लिए चले।

प्रथम दिवस: रात्रिकालीन भजन–प्रवचन सत्र

सायंकालीन सत्र में संगीत सरिता का प्रवाह आरंभ करते हुए आर्य जगत के सुप्रसिद्ध सैद्धांतिक भजन उपदेशक पंडित नरेशदत्तजी ने सुमधुर स्वरों में गायत्री मंत्र और इसके अर्थ का गायन कर ऋषि महिमा के गीत 'जग में वेदों की जब तक निशानी रहे, महर्षि की अमर यह कहानी रहेऽऽऽ प्याराऽ रिसीवर प्याराऽऽऽ' सुनाकर सत्यार्थप्रकाश की महिमा का एक गीत 'सत्यार्थ प्रकाश खजाना, नहीं जिसने इसे पहचाना, वह रोता दिया है दिखाईऽ मैं लुट गया हाए दुहाईऽऽऽ' सुनाकर सत्यार्थप्रकाश की महिमा बताई। परमात्मा के नाम पर मतभेदों को उजागर करते गीत 'नाम का झगड़ा, रूप का झगड़ा, स्थान का झगड़ा हैऽऽ भक्त कहाने वालों में भगवान का झगड़ा हैऽऽऽ' प्रस्तुत किया। 'सर्वोत्तम नाम ईश्वर का एक ओ३म् है, इस दिल से भूलाना नहीं चाहिए!' गाकर उपस्थित जनों को विभोर कर दिया।

भजनों के बीच–बीच में उदबोधन देते उन्होंने कहा कि जैसे बाजार से कोई चीज खरीदते समय हम उसे सरकार द्वारा स्वीत पैमाने के अनुसार लेते हैं। वैसे ही धर्म और धर्म को जानने के लिए एकमात्र पैमाना महर्षि दयानंद सरस्वती ने वेदों को बताया और धर्म के नाम पर चल रहे सभी मत मतान्तरों की समीक्षा की और सिद्धांतों को भी उन्होंने वेद की कसौटी पर ही सत्यार्थ प्रकाश में कसा है। एक प्रश्न उठ सकता है कि वेद सब सत्य विधाओं का पुस्तक है, यह कैसे कहा जा सकता है? महर्षि ने इसका उत्तर देते हुए लिखा है कि जो जगत में है, वह वेद में है और जो वेद में है, वह जगत में है! इससे पता चलता है कि इस जगत में जीने के लिए मार्गदर्शिका या धर्मग्रंथ वेद ही है! ईश्वर का मुख्य एवं निज नाम ओ३म् है। इसी कें अकर,उकार व मकार में अन्य सभी नामों का समावेश हो जाता है।

आर्ष गुरुकुल आबू पर्वत के आचार्य ओमप्रकाशजी ने अपने वक्तव्य के आरंभ में पद्मश्री आचार्या सुकामा जी का जन्म, शिक्षा इत्यादि से परिपूर्ण परिचय दिया। तत्पश्चात श्री विनय जी विद्या अलंकार का परिचय दिया और कहा कि यह पहला अवसर है जब किसी गुरुकुल के आचार्य या आचार्या को भारत सरकार द्वारा पद्म पुरस्कार दिया गया है। यह हम सभी आर्यों और आर्य जगत के लिए गौरव की बात है।

आचार्य जी ने कहा कि गुरुकुल में उन्हें ही पढ़ना चाहिए जो अपना सारा जीवन समाज की सेवा में लगाना चाहे। आर्यसमाजी भी अपने भावी हितों को देखते हुए व व्यक्तिगत श्रद्धा की कमी से बच्चों को गुरुकुल में नहीं डालते हैं। आचार्यजी ने कहा कि कोई बात नहीं, यदि आप अपने बच्चों को गुरुकुल में नहीं डाल सकते तो गुरुकुल में पढ़ रहे विद्यार्थियों के खर्च का व्यय वहन कर लीजिए। उन्होंने आह्वान किया कि गुरुकुल में पढ़ने वाले पाँच बालकों एवं पाँच बालिकाओं के व्यय उठाने की घोषणा आज ही जोधपुर के लोगों को कर देनी चाहिए। उपस्थित श्रोताओं को एक आर्यसमाजी के रूप में अपने कर्तव्य का बोध कराते हुए आचार्य जी ने कहा कि आप घर पर या आर्य समाज में यज्ञ कर लें, सवेरे शाम संध्या कर ले, स्वाध्याय कर लें विद्वान आए तो घर ले जाएं! इतने मात्र से आपका कर्तव्य पूरा नहीं होता। यह तो आपका व्यक्तिगत और पारिवारिक कर्तव्य मात्र है। आपका समाज, राष्ट्र और विश्व के प्रति कर्तव्य बाकी रहता है। यह

आर्यसमाज में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को सोचना चाहिए कि प्रचार का कार्य मात्र विद्वानों और उपदेशकों मात्र का नहीं है, हम सबको उपदेशक बनाना होगा। पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी, पंडित लेखरामजी, स्वामी श्रद्धानंद किसी गुरुकुल में नहीं पढ़े थे। अतः यह नहीं सोचें कि गुरुकुल में पढ़ने वाला ही आर्यसमाज का प्रचारक बनेगा! गुरुकुल में नहीं पढ़ने वाले लोग भी प्रचार कर सकते हैं और गुरुकुल में शिक्षित लोग भी आर्यसमाज से पृथक हो जन सामान्य की भीड़ में शामिल हो जाते हैं और विनय जी विद्यालंकर जैसे गुरुकुल से निकले लोग शासकीय सेवा में जाने के बाद भी अपना तन मन और धन आर्य समाज और गुरुकुलों के प्रचार एवं प्रसार में लगे हुए हैं। अतः हम सब बिना किसी बहाने के तन–मन–धन से महर्षि के मिशन में लगें।

कुछ लोग सम्मेलनों और उत्सवों को सार्थक नहीं मानते, बल्कि व्यर्थ का खर्चा मानते हैं। वे कहते हैं कि इनमें आने वाले लोग तो वही के वही होते हैं। इनके बजाय शिविर ही लगने चाहिए। किंतु आचार्य जी ने कहा कि शिविरों का अपना महत्व है और इस प्रकार के कार्यक्रमों का अपना अलग महत्व है। उन्होंने स्वयं यहाँ आए श्रोताओं से पूछा है कि यहाँ आने से क्या फायदा है तो उन्होंने बताया कि यहाँ आकर तीन दिन रहने से अच्छे–अच्छे विद्वानों से ज्ञानामृत प्राप्त करके अगले कार्यक्रम तक हम अपने गाँव में जाकर के प्रचार करते हैं। अतः ऐसे कार्यक्रम होने ही चाहिए। महर्षि दयानंद के सिद्धांतों से परिचित, अवगत और समर्थक बहुत से लोग हैं किंतु संगठन से जुड़कर के उनके मिशन को आगे बढ़ाने वाले लोग कम है। संगठन सूक्त का पाठ करने वाले हममें मत भिन्नता अधिक है। महर्षि दयानंद और एक बुजुर्ग विद्वान पंडित गंगा दत्त के वार्तालाप को उद्धृत करते हुए आचार्य जी ने बताया कि पंडित गंगा दत्त जी ने महर्षि को निवृत्ति मार्ग छोड़कर प्रवृत्ति मार्ग पर चलने के लिए टोका था। महर्षि दयानंद ने जवाब दिया था कि समाज में जो अज्ञान, अभाव और दुर्दशा अर्थात अन्याय है, उसे मिटाने के लिए परम लक्ष्य मोक्ष को छोड़कर, समाधि के आनंद को छोड़कर मैं सच्चे शिव और ईश्वरीय वेदज्ञान के प्रचार प्रसार में लगा हुआ हूँ और इसके लिए मुझे बार–बार जन्म भी लेना पड़े तो भी मैं यह कार्य करूंगा। हमें उनके जीवन से कुछ सीख करके त्याग करते हुए धर्म के प्रचार के लिए तैयार होना चाहिए। दैनंदिन जीवन में समस्याओं के बहाने से प्रचार में नहीं लगने वाले लोगों को लक्ष्य करके एक घोड़े का उदाहरण दिया जो रहटकी खटखटाहट के कारण पानी नहीं पी रहा था। घोड़े के मालिक के उलाहने पर रहट के मालिक ने कहा कि खटखटाहट के बीच में घोड़े को पानी पीना सिखाओ, अन्यथा घोड़ा प्यासा रहेगा। क्योंकि पानी तो रहट की खटखटाहट से ही निकलेगा। इसी प्रकार कठिनाइयों के रहते हुए प्रचार कार्य में यदि हम नहीं करेंगे तो आने वाला समय हमारे लिए अच्छा नहीं होगा। वर्तमान परिस्थितियों का चित्र खींचते हुए आचार्य जी ने चेतावनी दी कि हमें आत्मबल महर्षि दयानंद के समान उत्पन्न करना होगा। बरेली में ईसाई मत के विरुद्ध वक्तृता से कलेक्टर नाराज हो गया और महर्षि को संदेश भेजा कि अंग्रेजो के राज में ईसाइयत के खिलाफ नहीं बोले। तब महर्षि ने चुनौती देते हुए कहा था कि वह वीर बताओ जो मेरी आत्मा को मार सके अन्यथा दयानंद तो सत्य कहना नहीं बोलेगा चाहे चक्रवर्ती सम्राट ही क्यों न नाराज हो जाए! दयानंद को कोई सत्य बोलने से रोक नहीं सकता! शरीर की रक्षा के लिए दयानंद धर्म का पालन नहीं छोड़ेगा चाहे शरीर रहे या नहीं।

महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन की ऐतिहासिकता बताते हुए आचार्य जी ने कहा कि महर्षि को जहर देने में केवल पाचक नहीं था, बल्कि अंग्रेज, मुसलमान और पौराणिक तक भी सम्मिलित थे।

काशी नरेश और काशी के पंडितों ने प्रलोभन दिया था कि आपको काशी विश्वनाथ दे देते हैं,पच्चीसवाँ अवतार घोषित कर देते हैं। मूर्तिपूजा सहित पाखण्ड का विरोध छोड़ दो। उदयपुर के महाराणा ने मूर्ति पूजा छोड़ने पर एकलिंग जी के गादी देने का प्रलोभन दिया! किंतु महर्षि ने कहा कि मैं परमात्मा के विरुद्ध नहीं जा सकता।

बागेश्वर धाम के धीरेंद्र शास्त्री की चर्चा करते हुए कहा कि उन्होंने वेदाध्ययन, यज्ञोपवीत और गायत्री के अधिकार से स्त्रियों को वंचित बताकर सनातन धर्म से दुश्मनी की है। ऐसे ही लोग हमारे धर्म को इस अधोगति और दुर्दशा तक ले आए हैं कि अदने से व्यक्ति भी इसे नष्ट करने की बात करते हैं और अधोगति करने वाले लोग गाल बजाकर रह जाते हैं। महर्षि ने सनातन धर्म की इस कमजोरी को समझा और उसे सुधारने के लिए कड़ा प्रहार किया। अज्ञान में डूबे हिंदू समाज को जगाने के लिए उन्होंने कठोर.शब्दों का प्रयोग किया। उनका व्यक्तिगत द्वेष तो अपने हत्यारे से भी नहीं था। स्वामी जी के कर्णवास प्रवास में ठाकुर गोपाल सिंह कहते हैं कि उनकी एक ताई जी 90 वर्ष की हंसाबाई ठाकुर ने महर्षि की विद्वता व कीर्ति की बात सुनी है। वे आपके दर्शन करना चाहती है व साथ ही आपसे यज्ञोपवीत और गुरु मंत्र लेना चाहती है। महर्षि ने आज से 160 वर्ष पहले 90 वर्षीय विधवा महिला को यज्ञोपवीत दिया, गायत्री का उपदेश दिया और ओ३म् जपने का आदेश दिया। ऐसे महर्षि के गीत माताओं–बहनों को तो रात दिन गाने चाहिए! नारीसमाज के लिए पिछले ५000 वर्षों में दयानंद से बढ़कर के उपकारक और समाज सुधारक व्यक्ति नहीं हुआ। दलितों और पिछड़ों के लिए भी महर्षि जैसा उद्धारक नहीं हुआ। अनूप शहर में उमेदा नाई महर्षि के लिए रोटी लेकर के आया। श्रद्धा और प्रेम से लाई रोटी को महर्षि ने खाया तो आसपास उपस्थित उच्च कुलों और ब्राह्मण वर्ग के कुछ लोग बोले–'स्वामी जी आपने नाई की रोटी खा ली!' स्वामी जी ने परिहास में उत्तर दिया की नाई की नहीं मैंने तो गेहूँ की रोटी खाई है। कितना सहज और अकाट्य उत्तर था! आज भी पौराणिक वेद विद्यालय में मात्र ब्राह्मण को ही प्रवेश देते हैं, जबकि आर्य समाज के गुरुकुल में कोई भी प्रवेश कर सकता है। जब तक ऐसे पाखंडी लोग समाज का नेतृत्व करेंगे तब तक यह समाज आगे नहीं बढ़ सकता और काशी नरेश को क्षमा करने, विशदाता को कारामुक्त कराने और जगन्नाथ को धन देकर पलायन करवाने के महर्षि के दयापूर्ण कार्यों का उदाहरण दिया। महर्षि ने अपने जीवन के सांध्यकाल में जर्मनी से पत्र व्यवहार किया था कि आप हमारे विद्यार्थियों को शिल्पकला (तकनीक) सीखाएँ। बदले में हम आपके विद्यार्थियों को वेदविद्या सीखाएंगे। इतनी चिंता थी महर्षि को देश की उन्नति के प्रति। महर्षि के ऐसे प्रेरक जीवन चरित्र को पढ़ने का संकल्प करें और उनकी जीवनियाँ प्रसारित प्रसारित करें।

न्यास और आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के कोषाध्यक्ष श्री जयसिंहजी गहलोत द्वारा चौदह लाख की लागत से एक प्रचार वाहन बनाकर न्यास को समर्पित करने का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि जयसिंहजी ने तो दान देकर के अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। अब प्रचार के

लिए कौन सहयोग देने को तैयार है? एक सप्ताह के लिए! एक दिन के लिए! एक महीने के लिए! या किसी भी समयावधि के लिए! हम प्रचार करेंगे तब हमारे सिद्धांतों का प्रचार प्रसार होगा। समाज का बहुत बड़ा तबका हमारे प्रचार के प्रतीक्षा में है।

इसके पश्चात विश्ववारा गुरुकुल रोहतक की ब्रह्मचारिणियों ने 'ऋषि दयानंद सरस्वती को नमन है बारंबार, उनका ऋणी है यह संसार..' गीत प्रस्तुत किया।

प्रो. विनयजी विद्यालंकार: यह एक ऐसा ऐतिहासिक स्थान है जहाँ महर्षि के भौतिक शरीर की जीवन यात्रा समाप्त करने का उपक्रम किया गया। किंतु उनके तित्व की यात्रा अभी भी आरंभ है। महर्षि की दो सौ वीं जयंती के कार्यक्रम को भारत के संस्कृति मंत्रालय ने स्वयं अपने हाथों में लिया है—यह महर्षि के व्यक्तित्व और कृतित्व की बहुत सी स्वीकृति है। जिनका महर्षि ने विरोध किया और जो महर्षि का विरोध करते हैं। इनमें आने वाले शंकराचार्य तक को भी कहना पड़ता है कि वेद की बात महर्षि दयानंद के बिना करें तो वह पूर्ण नहीं होती।

विद्यालंकरजी ने कहा कि अपनी यही मेधा और बुद्धि लेकर मैं जनसामान्य में कार्य कर रहा होता तो राजकीय सेवा कर निररर्थकता में ही जीवन समाप्त कर लिया होता। यह तो दयानंद, गुरुकुल और आर्यसमाज की देन है कि जिनकी कृपा से आज यहाँ बैठा हुआ हूँ। यह सारा सम्मान देव दयानंद, आर्यसमाज और गुरुकुल का है। इटली के एक जादूगर के चमत्कारों की चर्चा करते हुए श्री विनय विद्यालंकार ने बताया कि उसे जब पूछा गया कि आप अपने इस विशेषज्ञता या कलाकारी के बारे में क्या कहेंगे तो उस जादूगर ने जो कहा, वह बहुत ध्यान देने योग्य है। उसने कहा था कि मेरी तो अल्प कलाकारी है! कलाकारी तो है परमपिता परमात्मा की! देखिए! इसके बनाए विभिन्न तरह के गुलाब में विभिन्न तरह की महक है। उसी बनाई प्रत्येक वस्तु की कलाकारी को देखिए! मैं तो उसके सामने कुछ हूँ ही नहीं। इसलिए ईश्वर पर पूर्ण आस्था रखते हुए, पूर्ण विश्वास करते हुए अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति में लग जाना चाहिए। आज सबके लिए एकमात्र महर्षि दयानंद का मार्ग ही है जो सबको एक कर सकता है। महर्षि दयानंद कहते हैं कि वेद की ऋचाएं हमें चिंतन के उसे उच्च स्तर पर ले जाती है जहाँ हम अपनी आत्मा का भी चिंतन करते हैं, परमात्मा का भी चिंतन करते हैं और जिसे आज साइंस कहा जाता है उस विज्ञान का भी चिंतन करते हैं। उत्तराखंड के बहुत बड़े ज्योतिषाचार्य श्री रमेश जोशी है। अकादमी ने वेद सम्मेलन आयोजित किया था जिसमें मैं ऑनलाइन जुड़ा हुआ था। वक्ताओं ने वेद वेदों की चर्चा की, किंतु महर्षि दयानंद की चर्चा नहीं हुई। ज्योतिषाचार्य ने कहा कि मैं पौराणिक हूँ लेकिन सायण भाष्य को पढ़ने पर लगता नहीं कि यह वेद परमात्मा का ज्ञान है। किन्तु जब दयानंद के भाष्य को पढ़ते हैं तब लगता है कि यह परमात्मा का ज्ञान है। अर्थात् वेद को परमात्मा का ज्ञान सार्वकालिक और सार्वभौमिक सिद्ध करने के लिए महर्षि दयानंद के अतिरिक्त और कोई भाष्य आपको नहीं मिलेगा। इसीलिए महर्षि को वेदोद्धारक कहते हैं।

वेद मंत्र का अगला भाग कहता है '**यतो व्रतानि पस्पशः**'महर्षि ने 19वीं शताब्दी में कहा था कि सूर्य गति कहता है। 2022 तक वैज्ञानिक यही कहते थे कि सूर्य गति नहीं करता है। महर्षि ने वेद मंत्र के उदाहरण से बताया कि सूर्य अकेला गति करता है। विज्ञान आज कहता है कि सूर्य गतिशील है किंतु उसकी गति पृथ्वी से मापी नहीं जा सकती। क्योंकि पृथ्वी से दस लाख गुना

बड़ा सूर्य है जिसका चक्कर स्वयं धरा लग रही है। हाँ, पृथ्वी से अन्यत्र जाकर के देखें तो धरती के सापेक्ष सूर्य गतिशील दिखाई देगा।

जीव का संसार में आवागमन कैसे होता है? कौन इसकी व्यवस्था को संभालता है ? ऐसे प्रश्नों का उत्तर मात्र वैदिक विचारधारा दे सकती है।

सभी मातावलंबियों की एक गोष्ठी में बुलाया जिसका विषय था कि क्या ईश्वर है ? महर्षि को इस बात का श्रेय जाता है कि ईश्वर शास्त्र के साथ–साथ तर्क का भी विषय है। सातवें समुल्लास में महर्षि कहते हैं प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ईश्वर को सिद्ध किया जा सकता है। दुनिया का कोई अन्य दार्शनिक नहीं कहता कि प्रत्यक्षादि से ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है। आज आर्यसमाजी भी गंगा जाकर गंगादास और जमुना जाकर जमुनादास हो रहे है। जबकि हमें अपना पक्ष बहुत दृढ़ता किंतु विनम्रता के साथ रखनी चाहिए! क्योंकि जो विद्या आपके पास है, उसे सुन समझकर प्रतिपक्षी यही कहेगा की बात तो आपकी ही ठीक है। ऐसा सुनना ही हमारे लिए गर्व का विषय होता है। इस गोष्ठी के प्रतिभागी दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर कुरैशी ने कहा कि ईश्वर का अस्तित्व है। हम लोग इसे वैदिक विचारधारा से बताते हैं। वैदिक विचारधारा से इस्लाम के सातवें आसमान में खुदा होने की पुष्टि करते हैं। वैदिक विचारधारा में संध्या में प्राणायाम मंत्रों सात महाव्याहृतियों का उल्लेख करते हुए भू से सत्य तक ले जाते हुए कहा कि प्रथम पांच सीढ़ियों तक अटका रहे और ईश्वर के सच्चे स्वरूप का साक्षात्कार नहीं हो तो क्या उसे ईश्वर का साक्षात्कार होगा? हमारा सातवां आसमान वेद का यह सातवां 'सत्य' लोक है। ईसाई पादरी ने कहाकि प्रार्थना करने से ईश्वर सभी पापों को क्षमा कर देता है। जगत की उत्पत्ति करने की परमात्मा को आवश्यकता नहीं, जगत हमेशा से बना हुआ है। ईश्वर के सिद्धांत को लेकर के वैज्ञानिक प्रोफेसर वीके यादव ने कहा कि प्रत्येक परमाणु में न्यूट्रॉन, प्रोटॉन व इलेक्ट्रॉन होते हैं जिनमें से इलेक्ट्रॉन सक्रिय होता है। जब यह सक्रिय होता है तो गतिशीलता से जगत में क्रियाशीलता आती है। वैज्ञानिक ने बताया कि इलेक्ट्रॉन में एक उत्प्रेरक शक्ति होती है जो इसे सक्रिय करती है। यह उत्प्रेरक शक्ति क्या है– उसको आज तक विज्ञान परिभाषित नहीं कर पाया।यह प्रत्येक परमाणु में उपस्थित होती है। अधकचरा वैज्ञानिक ईश्वर को स्वीकार नहीं करता और पूर्ण वैज्ञानिक ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध नहीं कर पाते किंतु ईश्वर को नकारने की उनकी औकात नहीं है। यह विजय महर्षि के वैदिक दर्शन की है जो ईश्वर को कण कण में व्यापक बताता है। हम सत्य ज्ञान प्राप्त कर पूर्ण ईश्वर विश्वासी बनें, तब **'यतो व्रतानि पस्पशः'** अर्थात् व्रत को पालन करने की क्षमता आएगी। व्रत बंधन बुरा नहीं है। घर के दरवाजों में अंदर भी कुंडा होता है और बाहर से भी कुंडा है केवल बाहर से कुंडा कारागार में होता है। हमारे जीवन में भी बाहर का कुंडा रोगों, काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष,घृणा के रूप में लगा हुआ है। ऐसे बंधन को काटना है तो तुझे व्रत का बंधन लगाना पड़ेगा।**'यतो व्रतानि पस्पशः'**।

परमात्मा की सृष्टि को गहन दृष्टि से देखेगा तो तुझे व्रत का बंधन मिलेगा। आज जितना विज्ञान ने विकास किया है उतना ही एक बड़ा दुर्गुण 'अधीरता' सब में आती जा रही है। यह अधीरता परस्पर अविश्वास से उत्पन्न होती है और परस्पर अविश्वास ईश्वर में सब के सच्चा विश्वास नहीं होने से उत्पन्न होता है।

व्रत के बंधन को बंधन मत मानना! क्यों?'**इन्द्रस्य युज्यः सखा**' व्रतों का स्वामींवह परमात्मा आत्मा का सबसे योग्य मित्र है! इंद्र जीवात्मा है और विष्णु परमात्मा है। तुम्हारे सबसे योग्य मित्र का लगाया हुआ बंधन तुम्हें मोक्ष के मार्ग तक पहुँचाएगा।

उपसंहार करते हुए श्री विनय विद्यालंकार ने कहा कि आप जहाँ जाए, गौर से दयानंद की दार्शनिक दृष्टि का अवश्य चिंतन करें। दयानंद की तरह ही हमें आस्तिक बनना चाहिए और आस्तिकता के लिए प्रतिदिन परमात्मा से बात करनी चाहिए। हम आर्यजन दुनिया में विशेष हैं। हमें विशेष सिद्ध करने के लिए ईश्वर यह ज्ञान का भंडार मिला है जिसे साथ में लेकर प्रात और सायंकाल ईश्वर की संगत में रहे।

सनातन के विषय में बात करते हुए श्री विनय विद्यालंकार ने बताया कि वर्तमान में सनातन के पक्ष में जो लोग बोल रहे हैं उन्हें सनातन की समझही नहीं है और आर्यसमाज जो सनातन का सच्चा स्वरूप जानता है, वह चुप है। सनातन को बचाना है तो आर्यसमाज ही बचा सकता है।

द्वितीय दिवसः प्रातःकालीन यजुर्वेद पारायण यज्ञ सत्र

आश्विन कृष्णपक्ष प्रतिपदा संवत् २०८० विक्रमी शनिवार ३० सितंबर २०२३खीस्ताब्द

महर्षि दयानंद सरस्वती स्मृति भवन न्यास द्वारा आयोजित तीन दिवसीय १४०वें ऋषि स्मृति सम्मेलन के द्वितीय दिवस का आरंभ आज आश्विनकृष्ण पक्ष प्रतिपदा संवत २०८० विक्रमी शनिवार ३० सितंबर २०२३ खीस्ताब्दको विश्ववारा आर्ष कन्या गुरुकुल रोहतक की आचार्या पद्मश्री सुकामा जी के ब्रह्मत्त्व में यजुर्वेद महा पारायण यज्ञ से हुआ।

यज्ञोपवीत प्रदान करते समय आचार्याजी ने बताया कि यज्ञोपवीत परम पवित्र माना जाता है। यह हमारी वैदिक संस्कृति का प्रतीक है, यज्ञोपवीत हर देशकाल स्थान में हमें स्मरण करता है कि हमें यज्ञीय जीवन व्यतीत करना है। हमें तीन प्रकार के ऋणों से अपने आप को मुक्त करने का प्रयास करना है। ईश्वर जीव प्रति के सच्चे स्वरूप को समझना है। और सच्ची स्तुति प्रार्थना उपासना करनी है। दुःख की बात यह है कि हम जीवन को पवित्र बनाना चाहते हैं। किंतु जीवन को पवित्र बनाने के प्रतीकों को धारण करना नहीं चाहते। एक सुहागन स्त्री सुहाग के चिह्नों को धारण करने में गौरव का अनुभव करती है। किंतु हम अपनी वैदिक यज्ञ संसति के प्रतीक यज्ञोपवीत को धारण करने में शंका करते हैं। हमें यज्ञोपवीत को हमारी संसति के प्राण मानते हुए गले में धारण करता है। हम गले में बहुत भारी–भारी आभूषण धारण करते हैं। इस एक हल्के से सूत्र को धारण करने से कोई कष्ट नहीं होगा। हाँ जब भी गले पर हाथ जाएगा तो हमें यज्ञीय जीवन की अवधारणा स्मृति में आएगी और हम अपने जीवन को पवित्र बनाएंगे।

आचार्याजी ने बताया कि मध्यकाल में यजुर्वेद को कर्मकांड का विषय माना जाता था। जबकि यजुर्वेद यह बताता है कि एक व्यक्ति के रूप में एक हमारा क्या कर्तव्य है, परिवार के प्रति, समाज के प्रति, राष्ट्र के प्रति और संपूर्ण विश्व और प्रति के प्रति हमारा क्या कर्तव्य है! यहमार्गदर्शन यजुर्वेद देता है इसलिए महर्षि दयानंद ने यजुर्वेद को मनुष्य के हर क्षेत्र में कर्तव्य

का मार्गदर्शन करने वाला वेद बताया है।

यज्ञ, देवपूजा, दान, संगतिकरण, परोपकारादि कर्मों को मात्र मनुष्य ही सार्थक कर सकता है। यजुर्वेद ने कर्मशील बनाने का संदेश दिया है। प्रथम मंत्र में ही कह दिया है कि मानव! तू श्रेष्ठतम कर्मों का संपादन करने के लिए आगे बढ़! अंतिम अध्याय में यजुर्वेद कहता है कि तू संपूर्ण जीवन कर्म करता हुआ ही जीवन जीने की इच्छा कर, किंतु उन कर्मों में आसक्त मत हो! पदार्थ से और जिनके साथ हम व्यवहारों को साधते हैं उनके प्रति हमें आसक्ति नहीं हो। कर्म करते समय हम राग द्वेष और आसक्ति इन तीनों से अलग रहते हुए मात्र कर्तव्य कर्म मानकर उनके साथ आगे बढ़ें। यज्ञशाला में विराजमान सभी महानुभावों को आर्यसमाज के प्रथम और तृतीय नियम का पाठ करवा कर यजुर्वेद के आठवें अध्याय से आहुतियाँ दिलवाने का शुभारंभ आचार्याजी ने किया।

प्रथम तीस मंत्रों से आहुति दिलवा कर आचार्याजी ने यजुर्वेद के आठवें अध्याय के तेरहवें मंत्र **'देवतस्यैनसोऽवयजनमसि मनुष्यतस्यैनसोऽवयजनमसि पितृतस्यैनसोऽवयजनमस्यैत्मतस्यैनसोऽवयजनमसि एनसएनसोऽवयजनमसि। यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि।।'** पर व्याख्यान देते हुए बताया: जब हम मन में किसी अकरणीय विचार को लाते हैं तो वह पाप कहलाता है और जब उसे कार्य रूप में परिणत कर देते हैं तो वह अपराध बन जाता है। फल तो दोनों का मिलता है। हाँ! अपराध बहुत भारी हो जाता है। अतः अपराध से तो कम से कम उसे बचा लेना चाहिए। वेद में प्रार्थना भी की गई है कि हे पाप! तुम मुझसे दूर चले जाओ। मेरे पास तेरा कोई स्थान नहीं है! तू यहाँ मत आया कर। तू जंगल में चला जा और वृक्षों से टकरा टकराकर नष्ट हो जा! विद्वानों के द्वारा किए गए पाप हों या विद्वानों के प्रति किए गए सामान्य मनुष्यों के पाप! ऐसे पाप को परमात्मा! आप दूर कीजिए! पितृजनों के प्रति और पितृजनों द्वारा भी किए हुए पाप को आप दूर करने वाले हो! अपने और अपने प्रति किसी अन्य द्वारा किए गए पाप को भी दूर करने वाले आप ही हो। आत्म कृत अपराध जो की राग द्वेष और आसक्ति से उत्पन्न होता है उसे भी आप दूर करें। हे परमात्मा!आप प्रत्येक पाप से हमें दूर करने वाले हो। मैं जानकर भी पाप करता हूँ और अनजाने में भी पाप कर देता हूँ। आप उन सबके दूर करने वाले हो! पापों का परिणाम दुख होता है। अतः आनंद के लिए हम अपने ज्ञान और सामर्थ्य से उसे (पाप को) दूर करने का प्रयास करें और असफल होने पर परमपिता परमात्मा को समर्पित होकर प्रार्थना करें तो हम इन पाप कर्मों से स्वयं को दूर रख पाएंगे।

प्रसंगवश आचार्याजी ने बताया कि विद्वान का सम्मान यदि सामान्य व्यक्ति नहीं करेगा तो वह विद्वान के अपमान से भी बढ़कर विद्या और ज्ञान का अपमान है। जीवन में अपने से बड़ों के प्रति कभी भी प्रतिक्रिया का भाव नहीं रखें। आज दो भाईयों में भी खाई बन गई है, क्योंकि बच्चे माता–पिता के उपकार का स्मरण नहीं करते और धैर्य नहीं रहने से बच्चों को यदि मां–बाप डाँट भी दें तो घर से बाहर निकल जाते हैं! फांसी लगाने की तैयारी करते हैं! धर्म का प्रथम लक्षण धैर्य हमारे जीवन से निकल रहा है। हम उन श्रीराम के वंशज हैं जो व्यक्ति के सौ अपकारों को भुलाकर उसके किए गए एक उपकार को भी याद रखता है।

अगले विराम में आचार्य जी ने बताया कि परमात्मा के विभिन्न नाम पर अज्ञान को सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास द्वारा महर्शि ने दूर किया। लौकिक उदाहरण एक स्त्री का दिया जो किसी की मां है, किसी के पुत्री है, किसी की बहन है, किसी की पत्नी हैऔर विभिन्न संबंधों में अलग–अलग व्यवहार को सफलतापूर्वक साधती है।

एक ही परमात्मा को अनेक नामों से संबोधित करने के प्रमाणस्वरूप आचार्याजी ने यजुर्वेद के अश्टम अध्याय के मंत्र संख्या ३८ से ४० को उद्धृत किया:

अग्ने पवस्व स्वपाऽअस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिम्मयि पोषम। उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसेऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे। अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वन्देवेष्वसि वर्चस्वानहम्मनुष्येषु भूयासम्।।३८।।

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रेऽअवेपयः। सोममिन्द्र चमूसुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजसेऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे। इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठाऽहम्मनुष्येषु भूयासम्।।३६।।

अश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा। उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय । सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठाऽहम्मनुष्येषु भूयासम्।।४०।।

आचार्याजी ने बताया कि 38वें मंत्र में परमात्मा को अग्नि 39 में इंद्र और 40 में सूर्य नाम से संबोधित करते हुए प्रार्थनाएँ की गईं हैं। यही बताता है कि परमात्मा तो एक ही है। हमें जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, उसके दाता मानकर तदनुसार नाम परमात्मा का लेकर के हम उस प्रार्थना को करते हैं। इन तीनों मंत्रों की व्याख्या कर आचार्याजी ने बताया कि हमारा जीवन जब दीप्ति से भरपूर हो जाता है तो अंधकार अज्ञान नष्ट हो जाता है।

प्रसंगवश आचार्याजी ने बताया कि वेदों में मात्र प्रार्थना ही नहीं है। इसी अध्याय के तैंतालीसवें 43वें मंत्र **इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते दिते सरस्वति महि विश्रुति । एता तेऽअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुतम्ब्रूतात्।।४३।।** में नारी को ग्यारह विशेषणों से सुभाषित करके उसका सम्मान बताया गया है। गुणगान किया गया है। उसकी गरिमा का भान कराया है। राष्ट्र प्रार्थना में नारी को पुरंधि अर्थात नगरों को धारण करने वाली बताया गया है। नारी अपने उसे स्वरूप को पहचान नहीं पा रही है। दीर्घकाल से यज्ञोपवीत, शिक्षा, वेदाध्ययनादि से वंचित दबी कुचली अबला नारियों का उत्साहवर्द्धन करने हेतु पंचतंत्र के रचयिता विष्णु शर्मा की कथा बताई। आचार्याजी ने बताया कि एक राजा के पाँच मूर्ख पुत्रों को उन्होंने पशु पक्षियों की शिक्षाप्रद कहानियों के माध्यम से शिक्षा देकर विद्वान् बना दिया। उन्हीं विष्णु शर्मा ने कहा कि घर को घर नहीं कहते। गृहिणी को घर कहा जाता है। जिस गृह में गृहिणी नहीं है – वह घर, घर नहीं हो करके जंगल है। वह गृहिणी कैसे बनती है, वह वेद का यह मंत्र बताता है। अतः नारियों को भी उत्साहपूर्वक विद्यार्जन और वेदाध्ययन करना चाहिए। मंत्र कहता है कि है नारी यह ग्यारह तेरे विशेषण है! तू उनके अनुसार बन और आचरण कर। तू सबको स्वीकार करने योग्य, आह्न करने योग्य है, तुम्हारी कामना सब

करते हैं, पति पत्नी के रूप में कामना करता है, पौत्र दादी के रूप में कामना करता है, पुत्र मां के रूप में काम ना करता है। तुम सदा ऐसा व्यवहार करो कि जिससे तुम व्यवहार करो उनके चेहरे पर सदा प्रसन्नता रहे। पुरुष अग्नि रूप है तो नारी सोम रूप है। आप शांति का प्रतीक हैं। चंद्रमा सोम है। उसकी शीतल चांदनी में कितनी प्रसन्नता और आह्लाद होता है। हे नारी!तुम्हारे चेहरे पर भी आह्लाद और शांति व प्रसन्नता होनी चाहिए! जिसे प्रकाशवती पत्नी मिलती है वह पति बहुत सौभाग्यशाली है। नारी अदिति है। वह बड़े से बड़े संकट में भी दृढ़ता की प्रतिमूर्ति पर्वत के रूप खड़े रहती है। इतिहास में भी हम नारी को वीरांगनाओं के रूप में देखते हैं। वह प्रशस्त विज्ञानशाली है, पूजनीया है। महर्षि भी कहते हैं कि पत्नी के लिए यदि पति पूज्य है तो स्त्री भी पति के लिए पूजनीया है। नारी जिस समाज में प्रसन्नचित्त होकर प्रसिद्धि को प्राप्त करती है, वह समाज धन्य हो जाता है। नारी हिंसा के योग्य नहीं है। वह तो अघ्न्या है। उसे दुख नहीं दिया जा सकता है। एक नारी को दुख दें तो पूरा परिवार, समाज और राष्ट्र बर्बाद हो जाता है। यदि नारी दुखी दिखाई देती है तो उसके पास बैठिए, प्रेमपूर्वक उसकी समस्या को पूछिए और उसका निवारण कीजिए। नारी की गरिमा का इससे सुंदर वर्णन और कहीं मिल नहीं सकता। इन व्याख्याओं के उपरांत आचार्य जी ने नवम् मंडल से आहुतियाँ दिलवानी आरंभ की और प्रथम विराम में नवम् अध्याय के प्रथम मंत्र **'देव सवितः प्रसुव यज्ञम्प्रसुव यज्ञपतिम्भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचन्नः स्वदतु स्वाहा।।'** की व्याख्या करते कहा कि वाणी में सत्य और माधुर्य इन दो गुणों का समावेश होने से यह वाणी सबके लिए सुस्वादु और वरदायिनी हो जाती है। एक दूसरे के प्रति सत्य वाणी बोलने से विश्वास बनेगा और विश्वास संपत्तियों का आधार है। हमारी वाणी में माधुर्य रहने पर हम हानि को भी सहन कर जाते हैं और लाभ की स्थिति में निरभिमान रह सकते हैं।

यज्ञोपरांत व्याख्यान

आज अपने व्याख्यान में श्री विनयजी विद्यालंकार ने कहा कि सत्य सनातन वैदिक धर्म यज्ञ का धर्म है, जो मनुष्यत नहीं होकर ईश्वर प्रदत्त है। वेदों के साथ–साथ ब्राह्मण ग्रंथ, अरण्यक, उपनिषद्, दर्शन आदि भी वैदिक वाङ्मय के हमारे ग्रंथ है। इनमें से छांदोग्य उपनिषद् धर्म को स्पष्ट करते हुए कहता है कि धर्म के तीन स्कंध है। पहले स्कंध में तीन चीज हैं –यज्ञ, अध्ययन और दान! दूसरे में तपको स्कंध बताया है और तीसरा स्कंध ब्रह्मचर्य बताया है। ये तीनों स्कंध जब साथ–साथ होते हैं तब धर्म का प्रारूप बनता है। इनमें से कोई एक अथवा एक का ही कोई अंग धर्म के मार्ग को प्रशस्त नहीं करता। समग्रता ही से धर्म का मार्ग प्रशस्त दर्शित होता है। हमने मात्र यज्ञ को पकड़ा है और यज्ञ के भी एक भाग मात्र को पकड़ा है। महर्षि ने यज्ञ के विस्तार किया औरमहर्षि पाणिनि को उद्धृत कर यज्ञ का अर्थ बताया देवपूजा, संगतिकरण और दान!

उपनयन संस्कार की व्याख्या करते हुए प्रो. विनयजी ने बताया कि जन्म–जन्मांतर से

हुए दृष्टिदोष को बालक से हटाने के लिए जब बालक में विचारों को ग्रहण करने की सामर्थ्य आने लगे, कार्यशक्ति का विकास हो, तब उपनयन संस्कार करना वैसा ही जैसे एक चश्मा उपनेत्र या उपनयन दृष्टि के दोष को दूर करता है। वैसे ही जीवन दर्शन में जो दोष जन्म जन्मांतर के संस्कारों या तामसिक लोगों की संगति से आए हैं, वहां स्पष्ट दृष्टिकोण लाने के लिए उपनयन संस्कार किया जाता है और उसके उपनेत्र का कार्य, उसकी दृष्टि को शुद्ध करने का कार्य आचार्य करता है। आचार्य शिष्य से कहता है कि तेरा जीवन ऋणी है तीन ऋणों में शेष सभी ऋणों को समाहित कर दिया। पहला देवऋण, दूसरा पितृऋण और तीसरा ऋषिऋण। तुम्हें इन तीनों से उऋण होना है। इन तीनों ऋणों में से हमारी दिनचर्या में ऐसे कर्तव्य को समाहित करना है जिनको करने से कोई पुण्य नहीं होता, लेकिन नहीं करने से पाप होता है। इन पंचमहायज्ञों को जीवन में,दिनचर्या में समाहित करना है।

आज बच्चों की शिक्षा केवल धनशक्ति पर केंद्रित है और गुरुकुल में आचार्य कहता था तेरी आत्मशक्ति को सबसे पहले समृद्ध कर और पांच यज्ञ नित्य किया कर!

गुरुकुल से प्राथमिक शिक्षा प्राप्त एक महानुभव केंद्र सरकार में राज्य मंत्री बन गए। नमामि गंगे प्रोजेक्ट के लिए उन्होंने कहा कि गंगा का सर्वाधिक प्रदूषण तो अस्थियां और शरीर प्रवाहित करने से होता है। इसे बंद करना नमामि गंगे के लिए आवश्यक है। दूसरे ही दिन हरिद्वार के पंडों ने प्रदर्शन करके उनका पुतला फूँका। वे मंत्री भी न रहे।

इन पांच यज्ञों से हम तीनों ऋणों से उऋण हो सकते हैं। परमदेव परमात्मा का ऋण ब्रह्मयज्ञ से, जड़ देवताओं का देवयज्ञ से, मानवेतर प्राणियों के लिए बलिवैश्वदेव यज्ञ से! एक ऋण के लिए तीन यज्ञ की आवश्यकता होती है। पितृऋण से उऋण होने के लिए हम उनके आचरण का अनुकूल चलें और जैसे उन्होंने हमारा निर्माण किया हम अपनी संतान का निर्माण और भी उत्तम प्रकार से करें।

प्रसंगवश उन्हानें बताया कि हिमाचल और उत्तराखंड में श्राद्ध का बहुत महत्व है। श्राद्धपक्ष में कोई खरीदारी नहीं करते। किंतु जीवित का श्राद्ध सुनते ही चौंकते हैं। विद्वानों का श्राद्ध करने से घर में ज्ञान का आलोक होता है। हमारे पतन के लिए समाज भी दोषी है। जिस समाज में सुकर्मों की प्रशंसा होती थी और दुष्कर्मों को दुष्कर्म के रूप में घोषित किया जाता था। उसी समाज में अब लोगों में बुराई को बुरा कहने की हिम्मत नहीं रह गई। माता–पिता भी अपने बच्चों को दंड देने की बात तो दूर, कटु वचन कहने से भी डरते हैं कि कोई उल्टा कदम उठा लेगा। अनपढ़ समाज में भी संध्याकाल होने पर माता–पिता या घर के बड़े बूढ़े लोग और सब व्यापार रोक कर संध्या वंदन भजन कीर्तन में लग जाते थे। ऋषि ऋण से मुक्त होने के लिए अतिथियज्ञ, पितृऋण से मुक्त होने के लिए पितृयज्ञ! अतिथि शब्द में तिथि शब्द का तात्पर्य सीमा भी होता है। अतिथि की कोई सीमा नहीं होती अर्थात असीम ज्ञान से युक्त परमपिता परमात्मा के ज्ञान के संवाहक विद्वान आचार्य को अतिथि मानकर सत्कार करना अतिथियज्ञ हैं। महर्षि दयानंद ने कहा है कि अविद्वान धार्मिक आदरणीय है और धार्मिक अविद्वान आदरणीय नहीं है।

द्वितीय दिवस: प्रात:कालीन भजन-प्रवचन सत्र

सत्र के आरंभ में दक्षिण भारत से पधारी बहन हेमलताजी ने श्री सतपालजी पथिक का हिंदी भजन 'अपने धर्म ग्रंथ पढ़ने का नर नारी अभ्यास करें, वैदिक शास्त्रों की बातों पर श्रद्धा से विश्वास करें!' प्रस्तुत किया और श्रोताओं के हृदय को आनंदित कर दिया। इनके उत्साहवर्द्धन के लिए आदरणीय नरेशदत्तजी ने पेटीबाजे पर और अमितजी ने ढोलक पर सहयोग भी दिया।

पंडित नरेश दत्त जी आर्य ने 'ईशभक्ति में मन को लगाया करें, परम आनंद मन में ही पाया करें...' से अपने संगीत सरिता का प्रवाह आरंभ किया। पश्चात 'यूं लगे सर्वत्र आनंद वर्षा हो रही, भक्त जब हो मग्न, लगता ओम के गुणगान मे..' के बाद 'प्रभु प्यारे से जिसका संबंध है, उसे हर पल आनंद ही आनंद है..' गाकर भक्तिमय वातावरण बना दिया। फिर उत्साह वर्धन के लिए गया 'तू है मजबूर किस बात में, जब विधाता तेरे साथ में..' और 'आनंद स्रोत बह रहा पर तू उदास है; अचरज है जल में रहकर भीए मछली को प्यास है... 'सुनाया। भक्ति के इस आनंद को गूंगे का गुड़ बताते अंत में गाया 'गूंगा किस तरह गुड़ की महिमा गा सके.. बहुत सी बात ऐसी है जो बतलाई नहीं जाती, समझ में आ तो जाती है, वह समझाई नहीं जाती..'

पद्मश्री आचार्या सुकामा जी ने ऋग्वेद के दशम् मण्डल के ५३वें सूक्त के छठे मंत्र **'तन्तुं तन्वन्रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया तान् । अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम।।** का मधुर स्वर में उच्चारण कर अपने व्याख्यान के आरंभ में इस ऐतिहासिक स्थल से मिलने वाली प्रेरणा को बताया।

आचार्याजी ने बताया कि वह एक ग्रामीण परिवेश की बेटी है। महर्षि दयानंद की कृपा से आपके पिताजी को सत्यार्थप्रकाश मिला जिससे उन्हें पता चला कि महिलाओं को भी शिक्षा दी जाती है और गुरुकुल में शिक्षा दी जाती है। पूछताछ करने पर कन्या गुरुकुल नरेला का पता चला। वहाँ जाकर गुरुकुल का अवलोकन कर निश्चय कर लिया की पुत्री शिक्षायोग्य होते ही यहीं भरती कराई जाएगी। आधुनिक शिक्षा तो वे दिलाना चाहते ही नहीं थे। हाँ सत्यार्थप्रकाश से उन्हें प्रकाश मिल गया। आठवर्ष तक उन्होंने घर पर ही बालिका को पढ़ाया। पश्चात गुरुकुल नरेला को समर्पित कर दिया। हॉकी स्नातिका बनने के पश्चात और मध्य में भी स्वामी ओमानंद जी के जिस त्याग का और बालिकाओं के लिए भी गुरुकुल की व्यवस्था करने का अनुभव किया उस पर प्रकाश डाला।

उन्होनें बताया कि महर्षि ने प्रत्येक क्षेत्र में क्रांति की। अध्यात्म के क्षेत्र में ईश्वर, जीव, प्रति के स्वरूप व संगतिकरण, धर्म के क्षेत्र में अंधविश्वास पाखंड कुरीतियों से धर्म को निकाल कर अभ्युदय और निश्रेयस के संगति कारण से जोड़कर धर्म का सत्य स्वरूप हमारे सामने रखा। शिक्षा के क्षेत्र में तो महर्षि दयानंद ने ऐसी क्रांति की जगत उन्हें महान

शिक्षाविद के रूप में याद करता है। उन्होंने शिक्षा का आधार वेद बताया और शिक्षा की अनुपम परिभाषा की जो अन्यत्र प्राप्त नहीं होगी। आज शिक्षा का जो स्वरूप आपके सामने है केवल रोजगार उन्मुख शिक्षा है किंतु महर्षि की परिभाषा में रोजगार को कोई स्थान नहीं है। वह लिखते हैं 'जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्माता, जितेंद्रियता आदि गुणें की वृद्धि हो,उसे शिक्षा कहते हैं। इस परिभाषा में आजीविका की चिंता नहीं है।

विद्या अर्थात् उचित अनुचित का विवेक आ जाए। सभ्यता अर्थात् बाहर का व्यवहार जिसमें किस प्रकार रहना है, क्या पढ़ना है, क्या देखना है, कैसा व्यवहार करना है, इसका बोध हो जाए वह सभ्यता कहलाती है। आजकल तो सभ्यता चूर–चूर हो गई है। सभ्यता से मन में सात्विकता बनानी चाहिए थी। हमने पढ़ा था कि सादगीपूर्ण वेशभूषा अध्यात्म भावनाओं की रक्षा करती है। आज हमारी सभ्यता वासना के जाल में मिट्टी में मिल गई है। शिक्षा जगत दिग्भ्रमित हो गया है।

धर्मात्मा हमारे अंदर का जो आचरण है, सदाचरण है, वह धर्मात्मता में आता है। जितेंद्रियता के बारे में विद्यालयों से लेकर महाविद्यालयों में नहीं पढ़ाया जाता। शिक्षा का एक ही फल है–मानव निर्माण! दूसरा कोई फल नहीं है! महर्षि की परिभाषा से जब हम चलेंगे तो निश्चित रूप से मानव निर्माण होगा। सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास से ही महर्षि ने मानव निर्माण की नींव डाल दी। 8 वर्ष तक माता–पिता इस तरह से बालक का निर्माण करके उसके बाद तीसरे समुल्लास की अनुपालना में आचार्य को समर्पित कर दें, तो मानव निर्माण पूरा हो जाता है। माता पिता बालक को गुरुकुल में आचार्य के समक्ष लेजा निवेदन करते हैं–'मैंने छोटे–छोटे उपदेश देकर इसको शिक्षा दी है। मैंने इसे देखना, सुनना, पहनना, खाना सब कुछ सिखाया है अब आप इसका विकास कीजिए। मैंने इन संस्कारों के थोड़े से बीज डाले हैं। उन संस्कारों का विकास, वटवृक्ष बनाने का कार्य आपके चरणों में ही पूर्ण होगा। मैं तो आति से मानव को लेकर आपके समर्पण करता हूँ जिससे यह मेरा बालक मानव बन जाए।

आज मानव निर्माण बंद हो गया है और संसार में सबसे बड़ा अभाव मनुष्यों में मानवता का अभाव है। महर्षि व्यास ने मनुष्य को परिभाषित करते बताया कि जो सोच विचार के प्रत्येक कर्म को करता है, मनन करके कर्म को करता है इसलिए वह मानव कहलाता है। मनुष्य जन्म मिल जाने के बाद भी वेद बार–बार मनुर्भव का क्यों कहता है? इसलिए कि मात्र मनुष्य का शरीर धारण करने से मानव नहीं बनता है। वेद मनुष्य को आदेश करता है कि मनुष्य जन्म तूने लिया है तो कर्म तो करना ही पड़ेगा और यदि तू कम नहीं करेगा तो तुझे दस्यु नाम दिया जाएगा। इसलिए तू सत्यज्ञान को प्राप्त कर ज्ञान के प्रकाश में कर्मों को करना।

यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के सैंतालीसवें मंत्र **'अक्रन्कर्म कर्मतः सह वाचा मयोभुवा । देवेभ्यः कर्म त्वास्तं प्रेत सचाभुवः।।'** को उद्धृत कर आचार्याजी ने बताया

कि सुखदायिनी वेद वाणी के साथ मनुष्य को कर्म करना चाहिए। इसके परिणाम स्वरुप वे कर्म दिव्या बन जाते हैं जिससे हम मुक्त हो जाते हैं।

मंत्र में निहित भावों को बताते आचार्याजी ने बतायाः ज्ञान के प्रकाश से तू जी, सुंदर मार्ग पर चलेगा। अपनी बुद्धि के द्वारा तुम्हें और भी नए–नए मार्गों को रचना है। पुराने मार्गो को परिष्त करना है। उन प्रकाश युक्त मार्गों की रक्षा भी करनी है और दूसरों को भी उन मार्ग पर चलाना है। ज्ञानपूर्वक कर्मों का संपादन करना ज्ञान और कर्म का संगतिकरण करना है। इसके अभाव में अर्थात ज्ञान के अभाव में कर्म करने से ज्ञान बोझ बन जाता है। अकेले ज्ञान और अकेले कर्म से उलझने ही आएंगी। अतः उलझनों से बचने के लिए इन दोनों का संगतिकरण आवश्यक है। ज्ञान और कर्म का संगतिकरण करने वाले लोग उलझन रहित कर्मों का ताना–बाना बनाते हैं जिससे मानवता का उदय होता है।

महर्षि मनु ने कहा है कि अतपस्वी को, विद्या की निंदा करने वाले को, और जो असंयमी है, जितेंद्र नहीं है–उसे भी विद्या का दान ना करें। जो गुरुकुल में अंतेवासी नहीं बना उसे विद्या नहीं दें। गुरुकुल शिक्षा पद्धति केवल पाठ्यक्रम की पद्धति नहीं है, बल्कि वह जीवन पद्धति है। वह तप की दिनचर्या है, जिसमें बालक तप्त होकर पवित्र बन जाता है और ज्ञान को आत्मसात करने में सफल हो जाता है। आचार्याजी ने सुमित्रानंदन पंत की निम्नांकित पंक्तियों के साथ अपना व्याख्यान समाप्त कियाः –

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,मानव! तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सबकी तिल–सुषमा सेतुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम!....
...प्रभु का अनन्त वरदान तुम्हें,उपभोग करो प्रतिक्षण नव–नव,
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन मेंयदि बने रह सको तुम मानव!

प्रो0 विनयजी विद्यालंकारः मनुष्य जीवन सोद्देश्य है। उद्देश्य बहुत उत्तम है। शास्त्रों में एक शब्द आया है 'अर्थ'।'गौ' और 'पुरुष' शब्द के उदाहरणों से अर्थ का अर्थ समझाते हुए उन्होंने कहा कि 'गौ' शब्द का अर्थ गाय नहीं, किंतु गलकंबल वाली एक चौपाया पशु है जो दूध देती है –वह है। इसी प्रकार पुरुष शब्द के अर्थ से भी अर्थ का अर्थ समझाया।

जीवन के उद्देश्य से अधिकांशजन अनवगत होते हैं। पाश्चात्य जगत ईट, ड्रिंक एण्ड बी मेरी को जीवन का उद्देश्य मानते है, जिसकी समीक्षा करते पं. गंगाप्रसादजी उपाध्याय लिखते हैं कि खा मर्जी से सकते हो, पी मर्जी से सकते हो! लेकिन आनंद आपकी मर्जी से नहीं मिलता! वाममार्गियों का ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत भी उद्देश्य नहीं हो सकता।

जीवन का उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्ष की सिद्धि है। और वह भी सद्य सिद्धि! टाचमन, अंगस्पर्श, मार्जन, प्राणायाम, अघमर्षण, मनसा परिक्रमा, उपस्थान के बाद गायत्री का जाप किया। इससे सुंदर उपासना का कोई क्रम नहीं है। पहले ही आचमन मंत्र में जो अभीष्ट है वह प्राप्त करो। पितये आनंद प्राप्त करने के

लिए संध्या कर रहा हूँ। इष्ट जो सिर्फ मुझे सुखी कर सके! अभी उपसर्ग लगने से अभीष्ट का तात्पर्य होता है सभी ओर से कल्याण के कामना करना, सभी के कल्याण की कामना करना। यह उद्देश्य संध्या करने का होता है।'अभीष्ट' और 'पीतये' संध्या का उद्देश्य है।

सृष्टि का उद्देश्यः जीव का कल्याण और अपनी सामर्थ्य का उपयोग करने के लिए परमात्मा ने सृष्टि बनाई।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के इकतालीसवें सूक्त के प्रथम मंत्र **'यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । नू चित्स दभ्यते जनः ।।'**का निहितार्थ बताते कहा–
जिनकी बुद्धि प्राष्ट हो गई है, वे लोग (प्रकृष्ट बुद्धिवाले लोग) जिनकी रक्षा करते हों।

जिसकी रक्षा वरुण अर्थात् भक्तों का वरण करने वाला और भक्तों के द्वारा वरण किया जाने वाला, परम मित्र सबका मित्र और इस ब्रह्माण्ड के विराटाकार पिण्डों को नियमों में चलाने वाला और जीवों का भी नियंता परमात्मा करता है।

वह मनुष्य शत्रुओं के द्वारा नहीं मारा जाता और न ही हानि उठाता है। अर्थात् वह मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। ऐसे वरुण, मित्र और अर्यमा का रक्षा कवच प्राप्त करने के लिए, उसके द्वारा वरण किए जाने की पात्रता प्राप्त करने के लिए–

प्रतिदिन अपने कार्य व्यवहार का जीवन का निरीक्षण कीजिए। अपनी कमियों का निवारण कीजिए, अपने सद्गुणों को दृढ़ कीजिए। उनके वरण करने के बाद मृत्यु नहीं सताएगी। अतः मृत्यु से बचाना चाहो तो वरुण के कवच में आ जाओ।

प्रसंगवश विनयजी ने बताया कि महर्षि दयानंद की मूर्ति पर बहुत सी आपत्तियां होती है। स्वामी श्रद्धानंद जी लिखते हैं कि जीवन में द्वंद्व आने पर मेरे सामने चाहे महर्षिकृत वेदभाष्य रहे या ना रहे। किंतु ऋषि का दंड लिऐ हुए चित्र मेरे सामने रहता है, जिससे मैं कभी पतन के मार्ग पर नहीं जा पाता। मनुष्य से मनुष्य ही बनना और मनुष्य जन्म प्राप्त करते–करते मोक्ष प्राप्त कर लेना –यह है मृत्यु को जीतना।

द्वितीय दिवसः सायंकालीन यजुर्वेद पारायण यज्ञ सत्र

विश्ववारा आर्ष कन्या गुरुकुल रोहतक से पधारीं पद्मश्री आचार्या सुकामा जी ने यजमानों को यज्ञोपवीत प्रदान करने से पूर्व यज्ञोपवीत को सतत धारण करने के लिए प्रेरित करते हुए कहाः – यह यज्ञोपवीत आपको यज्ञ के समीप ले जाने वाला है और यज्ञ के समीप पहुंचकर आप यजमान बनेंगे। यजमान बनकर आप यज्ञ को अपने जीवन में धारण करें। इसी भावना से यज्ञोपवीत भी धारण करें।
सामान्य यज्ञ संपन्न करा कर यजुर्वेद के मंत्रों से आहुतियाँ दिलवाने से पूर्व आचार्य जी ने कहा कि वेद हमारा धर्म ग्रंथ है। अपने परिवार के छोटे–छोटे बच्चों को अपने धर्म ग्रंथ का नाम अवश्य याद करावे। वेद ही मानव मात्र का धर्मग्रंथ है, क्योंकि सृष्टि के आरंभ में

परमपिता परमात्मा ने वेद के माध्यम से हमारे समस्त कर्तव्य कर्मों का उपदेश किया है। सृष्टि का प्रथम ग्रंथ वेद है। प्राचीनतम होने के कारण वेद ही हमारा धर्म ग्रंथ है। अन्य मतावलंबियों के बच्चे अपने मत के ग्रंथों को जानते हैं। बस, हिंदुओं के बच्चे अपने असली धर्मग्रंथ के परिचय से वंचित है। महर्षि अग्नि के माध्यम से ऋग्वेद, महर्षि वायु के माध्यम से यजुर्वेद, महर्षि आदित्य के माध्यम से सामवेद और महर्षि अंगिरा ऋषि के माध्यम से अथर्ववेद हमें प्राप्त हुए हैं, जिनके क्रमशः ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान मुख्यतः विषय है। वैसे चारों वेदों में ही ये सम्मिलित रूप से है, लेकिन प्रधानता के आधार पर कर अलग–अलग विषयों के वेद कहे जाते हैं। इसके पश्चात यजुर्वेद के आठवें मंत्र से आहुतियां दिलवाने का क्रम आरंभ किया।

प्रथम विराम में यजुर्वेद के दशम अध्याय के द्वितीय से चतुर्थ मंत्र का विशेष उल्लेख करते हुए कहा कि इनमें राष्ट्र शब्द का बार–बार उल्लेख आया है इस अध्याय में इन मंत्रों में राजधर्म का उपदेश मिलता है। इस तृतीय मंत्र '**अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त देह्यर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहाऽपाम्पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपाङ्गर्भासि राष्ट्रदा राष्ट्रम्मे देहि स्वाहापाङ्गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि सूर्यत्वचस स्थ।।**'में मंत्री ने राजा को 10 गुणों से संबोधित करते हुए राज्य प्रदान करने की कामना की है।

ऐसे ही वेदों के उपदेश के कारण हमारे यहाँ इतिहास मिलता है कि निर्योग्य पुत्र होने पर राजा किसी अन्य युवक को राज दे देता है। कादंबरी के सुखनाशोपदेश का उल्लेख करते हुए आचार्य जी ने बताया कि उसमें मंत्री शुकनश राजकुमार को उपदेश देता है कि राजा कैसा होना चाहिए! कोई भी राजनेता सुखनाश के उपदेश को पढ़ लेगा, तो आदर्श राजा या शासक बनेगा। भारतीय संस्कृति ही ऐसी संस्कृति है जिसमे राष्ट्र को या भूमि को माता कहा है और स्वयं को राष्ट्र का जागरुक पुरोहित कहा है, जागरूक प्रहरी कहा है। हमारा समाज और राष्ट्र इसलिए महान् नहीं बनता कि हम समाज और राष्ट्र के प्रति हमारे व्यक्तिगत कर्तव्य का विचार हम नहीं करते और यही सोचते हैं कि अन्य लोग इसका विचार करेंगे! मैं क्यों करूं? राजा अपनी प्रजा के प्रति पुत्र का भाव रखते हैं और हम इस धरा के प्रति पुत्र का भाव रखते हैं कि हम राष्ट्र के पुत्र हैं। ऐसी भावना आने पर ही हम राष्ट्र के अंदर के और बाहर के शत्रुओं को टिकने नहीं देंगे।

यजुर्वेद के दशम् अध्याय के तेबीसवें मन्त्र '**अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा। पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मो अहन्त्वाम्।।**'के अंतिम चरण की व्याख्या करते आचार्याजी पे बताया कि पृथ्वी का पुत्र माता धरती से कहता है कि आप मेरी हिंसा मत करना! वैसे ही वह भी कहता है कि

मैं पुत्र भी तुम माता पृथ्वी की हिंसा नहीं करूंगा। यह मंत्र राष्ट्र धर्म के प्रतिपादक है इनको समझकर आचरण करने से हमारा देश महान राष्ट्र बन जाएगा।

जब हमारे राष्ट्र मैं स्वच्छता का अभियान चलता है तो हम भी अपने आसपास कहीं भी भूमि को मलिन नहीं होने दे। मां की गोद को कोई भी शिक्षित और ज्ञानी लोग मलिन नहीं करते! हम भी सुनिश्चित करें कि सार्वजनिक स्थानों पर किसी भी प्रकार की मलिता ना रहे। हम जहाँ भी रहे, जहाँ भी जाएँ, अपने आसपास लोगों को राष्ट्र के प्रति जागरूक चलते रहे और उससे पहले हम सचेत होवे।

यजुर्वेद के ग्यारहवें अध्याय के १४वें मंत्र " योगेयोगे तवस्तरँवाजेवाजे हवामहे । सखायऽइन्द्रमूतये।।" के भाव बताते कहा – हे सखा! हे इंद्र! हम परमपिता परमात्मा से युक्त होकर के प्रत्येक संग्राम में उस इंद्र को पुकारते हैं। ऐश्वर्यशाली परमात्मा, बलशाली परमात्मा को पुकारते हैं: –'हे प्रभु ! मेरे जीवन में प्रत्येक संग्राम में प्रत्येक अवसर पर आपको ही पुकारूंगा। मैं रक्षा के लिए आपको पुकारता हूँ कि आप मेरी सहायता कीजिए। देवासुर संग्राम में अक्सर असुर जीतते हैं। किंतु जब हमारे भीतर यज्ञीय भावना आ जाती है तो देवजीत ते हैं।

देव यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात ब्रह्म यज्ञ करवाया। इसके पश्चात पुरस्कार वितरण किया गया। श्री चंद्रकांत को प्रशिक्षण सहयोग के लिए, श्री सूरजभान सिंह को अंतर विश्वविद्यालय वुशु प्रतियोगिता में प्रथम आने के लिए, श्री नक्षत्र जांगिड़ को वुशु विश्व कप में रजत रजत पदक प्राप्त करने के लिए, श्री सुमित गहलोत को गणित की लगभग ढाई सौ वर्ष पुरानी को पहेली को हल कर एक नयी संख्या को अस्तित्व में लाने के लिए, श्रीमती मंजू एवं श्री प्रेम शास्त्री को सेवा और रसोई कार्य के लिए, श्री कन्हैया लाल जी लौहकार के रूप में सेवा के लिए, श्रीमती छोटी देवी एवं ओमजी गौ सेवक के रूप में, चंपा माताजी कि सेवा कार्य के लिए, श्री प्रदीपजी आर्य को सेवा कार्य के लिए, श्री रवि सांखला को टेंट सहयोग के लिए, श्री मुकेश शर्मा को सेवा के लिए, श्री भुट्टाराम को सेवा के लिए, श्री जय सिंह परिहार को तीन लाख रुपये दान देकर एक कक्ष का निर्माण कराने के लिए स्मृति चिह्न दिया गया। बहिन इंद्रावतीजी की निस्वार्थ सेवा के लिए, श्री सुरेंद्रसिंहजी योग प्रशिक्षण के लिए, श्री समर्पण मोदी योग सेवा के लिए, वयोवृद्ध आर्य श्री नरसिंह जी को सेवाकार्य के लिए, श्री योगेश जी को बिजली कार्य में सेवा के लिए, श्री प्रवीण जी गहलोत को भोजन शाला में स्वैच्छिक सेवा के लिए, श्रीमती रुचिरा को सेवा के लिए, संजय जी अग्निहोत्र कार्य में सेवा के लिए, श्री दिलीप जी को अग्निहोत्र कार्य में सेवा के लिए और पंजीकरण कार्य के लिए श्रीमंजीत जी सेवा कार्य के लिए समानित किया गया।

द्वितीय दिवसः रात्रिकालीन भजन–प्रवचन सत्र

पाली से आए श्री महेश जी बागड़ी उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान पाली संभाग ने साथी के साथ ईश्वर भक्ति का एक भजन प्रस्तुत किया।चैन्नई से से आई तेलुगूभाषी बहन हेमलता जी ने तेलुगु भाषा में आर्य समाज की महिमा मंडन करने वाला और मंत्रदृष्टा ऋषिकाओं और देशभक्तों की नामावली वाला गीत प्रस्तुत किया।

तत्पश्चात आर्यसमाज के स्वनामधन्य सैद्धांतिक भजनोपदेशक पंडित नरेशदत्तजी ने 'ऋषि ने जलाई, है जो दिव्य ज्योति, जहाँ में सदा ही जलती रहेगी...' के साथ अपनी संगीत सरिता प्रवाहित करते हुए 'सत्यार्थप्रकाश खजाना है...''पशु पक्षी अपने बच्चे अपने सामान ही जनते हैं, बिना बनाए मनुष्य बच्चा कभी मनुष्य नहीं बनता है... के साथ ही रिश्तो की समाप्त होती जा रही सार्थकता पर व्यंग्य करने वाला एक गीत 'न कोई बहन भाई, ना कोई चाचा ताईद्व ना कोई साली और साला... मैं हूं अकेला घर वाला...' एवं इसके बाद 'मां के बाद छठे वर्ष में पिता का नंबर आता है, उत्तम आचरण सब व्यवहार जीने की कला सिखाता है' के साथ ही साथ 'नींद नहीं आती मुझे नींद नहीं आती है' गाकर श्रोता गण को भाव विभोर कर दिया। बीच–बीच में बदलते समय के साथ अर्थ के अनर्थ उदाहरण सहित समझाए। शिक्षा के बदलते स्वरूप को जो व्यावहारिक से व्यापारिक हो गई उसकी तरफ ध्यान दिलाया। मांसाहार को जन्म सिद्ध अधिकार मानने वालों की खाल खींचाई करते हुए पंडित जी ने कहा की जो स्वभाव से मांसाहारी है उनके बच्चे भी जन्म से दूध पीते हैं, मांस नहीं खाते। इससे सिद्ध होता है कि जन्म सिद्ध अधिकार तो दूध पीना है, मांस खाना नहीं! कन्या भ्रूण हत्या को भी निंदनीय बताया।

पद्‌श्री आचार्य सुकामा जीः–ने माताओं को विशेष संबोधन देते हुए आह्वान किया कि बच्चों को तपस्वी बनाओ! उन्हें वेद मार्ग पर चलाओ। इसके लिए आपको स्वयं वेद पढ़ना और पढ़ाना पड़ेगा। समाज के बच्चों में पनप रही अधीरता और असहताशीलता पर आचार्याजी ने चिंता जताई। माता को घर की धुरी बताते हुए कहा कि परिवार माता के बचाने से बचेगा। बच्चों को संस्कृत माता के करने से किया जा सकेगा। उदारता लानी पड़ेगी, तो माता के द्वारा वेद पढ़ना और पढ़ाने के लिए भी माता को आगे आना पड़ेगा, क्योंकि घर की धुरी माताएँ बहने हैं। कहा भी जाता है कि माता भूमि से भारी है, तो माता को भूमि से भारी बनाना पड़ेगा। अन्यथा हमारे सामने सारी दुरवस्थाएं नंगा नाच करेंगी और हम रोक नहीं पाएंगे। इसलिए माता को सावधान किया और उलाहना दिया कि यह करती नहीं है। हमें हमारा कर्तव्य कभी नहीं भूलना चाहिए! बच्चों से कार्य तप और पुरुषार्थ कराओ। घर के सारे काम सिखाओ। लोग ताने मारते थे और अब भी मारते हैं कि

बालिकाओं को पढ़ाने से वे मेमसाब बन जाएगी, मां–बाप काम करेंगे। अपना अनुभव बाँटते आचार्याजी ने कहा कि ऐसे तानों का सामना करते हुए गुरुकुल में अध्ययनकाल में जब भी घर जाते तो जाते ही माता–पिता के साथ कंधा से कंधा मिलाकर काम करके जवाब दिया। सब ताने बंद हो गए और प्रशंसा मिलने लगी। आचार्य जी ने पंडित नरेशदत्तजी को धन्यवाद दिया जिन्होंने अपने भजनों देश का, समाज का फोटो खींचकर सबके सामने रख दिया। सोने, खाने और व्यवहार में ढील देना कोई दया नहीं है, यह मनमानी है। मनमानी करने वाला महान् नहीं बनता। मन की नहीं मानने वाला महान बनता है। वेदों की मानाने वाला महान बनता है! ऋषियों की मानने वाली महान बढ़ता है। तप करने वाले महान बनते है। विधर्मियों के कथन को रेखांकित करते हुए उन्होंने बताया कि वे लोग सुनिश्चित हैं कि हिंदुओं को धन कमाने दो! बड़ी–बड़ी कोठियाँ बनाने दो! यह तो हमारे लिए ही बन रही है जिनमें रहना तो हमें ही है। जगाते हुए आचार्याजी ने उपनिषद का संदेश दियाः उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत!

हमारी दुरवस्था का यह हाल है कि दो बच्चों का मन आपस में नहीं मिलता। अकेले बच्चे का मां–बाप से मन नहीं मिलता और वह माता–पिता से सब कुछ छुपाता है। माता–पिता को तो तब पता चलता है जब बच्चा हाथ से निकल चुका होता है। सब कुछ लुटा चुका होता है। जीवन उल्टा मार्ग पकड़चुका होता है। बिगाड़ हो चुका होता है।

आचार्याजी के उद्‌बोधन के पश्चात् विश्ववारा आर्ष कन्या गुरुकुल रोहतक की ब्रह्मचारिणियों ने 'चाहते हो सब एक होना, वेद का आदेश माना, संगच्छध्वं संवादध्वं..' गाया।

प्रोफेसर श्री विनयजी विद्यालंकारः–भोजन के बाद बढ़ती हुई रात्रि के साथ संख्या कम होने की तुलना एक दार्शनिक इमर्शन के जीवन की घटना से करते हुए बताया कि एमरसन ने घोषणा की कि आज उनका व्याख्यान होगा। बहुत भीड़ हुई लेकिन व्याख्यान रद्द कर दिया। दूसरी बार भी ऐसा ही किया। तीसरी बार व्याख्यान आयोजित किया तब भी लोग आए।तीसरी बार आए लोग इमर्सन का व्याख्यान सुनने को आतुर थे। बचे हुए आर्यजनों के बीच व्याख्यान को श्री विनयजी ने सनातन विषय पर केंद्रित रखा।

सनातन की परिभाषा देते हुए उन्होंने बताया कि प्रत्येक सृष्टि की आदि से लेकर अंत तक और पुनः सृष्टि आरंभ होने और पुनः अंत होने पर भी निरंतर जो एक सा रहता है, बदलता नहीं है उसे सनातन कहते हैं। आप बदली हुई परिभाषा गूगल पर देखेंगे तो विकिपीडिया में पाएंगे कि सनातन धर्म को हिंदू धर्म का एक संप्रदाय बताया गया है। कुछ लोग सनातन को वेद से संबंधित मानते हैं। कुछ बहुतदेववाद की बात भी करते हैं। यह भी पाएंगे कि सनातन एक ऐसा संप्रदाय है जिसके कारण समाज में विघटन होता रहा,

छुआछूत चलता रहा और अस्पृश्यता बढ़ती रही।

मूल उदात्त परंपरा से महाभारत काल के बाद के ५000 वर्ष के इतिहास में जो वितियाँ सनातन धर्म में आईं उनकी क्रमवार विवेचन करते हुए बताया कि कालक्रम में शब्दों के अर्थ का उत्कर्ष भी होता है अपकर्ष भी होता है। जैसे साहस शब्द के अर्थ का अपकर्ष हो गया जो अपराध से वीरता में बदल गया। बलात्कार जर्बदस्ती किए जाने वाला कार्य था जो अब एक लैंगिक अपराध मात्र में अपकर्ष हो गया। वेद में इंद्र परमात्मा है, जीवात्मा है, राजा है, सभापति है। किंतु आज कल इंद्र को आप अंतर्जाल पर देखो तो पाओगे कि इंद्र वह व्यक्ति है जिसने महर्षि गौतम की पत्नी के साथ दुराचार किया। अब काल विभाजन में ऋग्वेद को भी एक काल आवंटित कर दिया गया, जबकि अपौरुषेय ईश्वरी ज्ञान वेद कालबाधित नहीं है। सदैव एकरस है। ये मिथ्या धारणाएँ हैं। सुनियोजित धारणाएं हैं।

वेद, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत आदि में कुछ कुत्सित धारणाएं व प्रक्रियाएं प्रक्षिप्त हो जाने से अल्पबुद्धि लोगों ने इन ग्रंथो को अस्वीकार कर दिया और वेदों को, ईश्वरीय ज्ञान मानने से मनाही कर दी। ईश्वर को भी नकार दिया कि ऐसे अमानवीय कृत्य जिन ग्रंथें में है उसका बनाने वाला यदि ईश्वर है तो ईश्वर भी मानने योग्य नहीं है। नास्तिकता पनप गई। मत संप्रदाय पनप गए। किंतु हम नहीं जागे।

महर्षि ने जब इन प्रक्षेप के कारण और कुछ सिद्ध परंपराओं के बारे में सुना तो उन्होंने वेद और ग्रंथ और परमात्मा को नहीं नकारा किंतु घोषणा की की वेद यदि परमपिता परमात्मा की वाणी है तो उसमें ऐसी उचित घटनाएं नहीं हो सकती और ईश्वर पर अटूट विश्वास रखने वाले देवदयानंद ने इस बात को प्रमाणित भी किया।

महर्षि के जीवन की घटना बताते हुए उन्होंने कहा कि जब वे शुद्धचैतन्य ब्रह्मचारी थे तब गुजरात के साणंद में देखा कि एक बच्चे को बलि के लिए ले जाया जा रहा था। जहाँ एक परंपरा थी कि प्रतिवर्ष गांव के एक बच्चे की बलि देवता को प्रसन्न करने के लिए दी जाती थी। इस बार इस परिवार के बच्चे की बारी थी। शुद्धचैतन्य ने जब छोड़ देने को कहा तो जवाब मिला कि ठीक है इसको बचाना है तो तुम अपनी बलि दे दो। शुद्धचैतन्य ने अपना सर बलिवेदी पर रख दिया। इसी समय संयोग से अंग्रेज सरकार के पुलिस वाले एधर से निकले जिनके घोड़ों की टाप सुनकर बलिकर्ता भाग गए और शुद्धचैतन्य बचे।

सनातन में एक ईश्वर है। बहुत देव है किंतु देवाधिदेव उपासनीय परमात्मा ही है। सनातन में ईश्वर का अवतार नहीं होता। सनातन में मानव ईश्वर का अंश नहीं है। क्योंकि यदि ऐसा मानेंगे तो ओसामा बिन लादेन, आतंकी, अपराधी बलात्कारीभी ईश्वर का अंश है। हजारों हत्या करने के बाद भी शरीर त्याग कर सब ईश्वर हो जाएंगे। सनातन में ईश्वर,

जीव और प्रति तीनों अलग–अलग सकता है, शाश्वत है, नित्य है, अनादि और अनंत हैं। सच्चिदानंद की व्याख्या करते महर्षि लिखते हैं प्रति केवल सज है, जीव सत व चित् है और परमात्मा सत्य भी है, चित् भी है और आनंद स्वरूप आनंद आकर भी है। वृक्षों की पूजा का तात्पर्य वृक्षों का पालन करना है नकि उस पर रोली, मोली, चावल और दीपक लगाना। परमात्मा रस स्वरूप है, कल्याणकारी है, किन्तु सांसारिक रस परमात्मा नहीं है। सनातन में जन्मना जाति व्यवस्था नहीं है। आज सनातन पर हो रहे आक्रमण के कारण विवाद नहीं करना है संवाद करना है। सत्य को और अच्छाई को स्वीकार करना है। बुराई और कुरीतियाँ छोड़ना है। सत्य सनातन वैदिक धर्म के अनुसार गौ की हत्या करने वाले को राजा शीशे की बोली से मारे। सनातन में स्त्री और शूद्र को भी योग्यता अनुसार वेद पढ़ने का, गायत्री मंत्र पढ़ने का और ईश्वर की उपासना करने का तथा वेद पढ़ने का अधिकार है। सनातन की रक्षा के लिए उद्दंड होने की कोई आवश्यकता नहीं है आपके साथ सत्य सिद्धांत है तो आपको उद्दंड होने की आवश्यकता ही नहीं है।

लोग सनातन में आने वाली विकृतियों के सामने खड़े हो गए और वे प्रतिद्वंदी बनकर नये मतों के प्रवर्तक बन गए। उत्तराखण्ड में छुआछूत का वर्णन करे बताया कि कैसे आर्यसमाज और पं. गोविन्दवल्लभ पंत के पुरुषार्थ से लाखों हिन्दू ईसाई होने से बचे।

आपने आगे बताया–चीन का एक मशहूर दार्शनिक हुआ है कन्फ्यूशियस! उसने दो सौ वर्ष पूर्व सिद्धान्त प्रचलित किया कि यदि लोगों में आपसी विवाद है तो पहले जो हाथ उठाएगा वह हार जाएगा। सिद्धांत मे निहित अर्थ यही है कि पशु बल से वह व्यक्ति जीतना चाहता है जिसके पास तर्क, युक्ति और प्रमाण नहीं होता है।

सम्मेलन का शेष विवरण नवंबर अंक में जारी रहेगा।– संपादक।

ओ३म्

आपके पीपाड़ शहर (जोधपुर) में महर्षि दयानन्द सरस्वती की 200 वीं जयन्ति के उपलक्ष में वेद प्रचार एवं भारतीय संस्कृति के उत्थान हेतु चार दिवसीय दिनांक 16.10.2023 से 19.10.2023 तक कार्यक्रम किया जा रहा है जिसमें आर्य जगत के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सन्यासी एवं भजनोदेशक पधार रहे हैं।

इसमें आप सपरिवार अपने ईष्ट मित्रों सहित पधारकर धर्म लाभ प्राप्त कर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाये।

सम्पर्क सूत्रः– 9414462720, 9928645146, 9610885050, 9664328271

प्रो.विनय विद्यालंकार
आचार्य ओमप्रकाशजी आबू
ध्वजावतरण
पं.नरेशदत्तजी व अमितजी
उत्साही बहिन हेमलता
पद्मश्री आचार्या सुकामाजी
विश्ववारा गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियाँ

Postal Reg. Jodhpur/434/2021-2023

Date of Posting 9,10-10-2023
Date of Print 9-10-2023

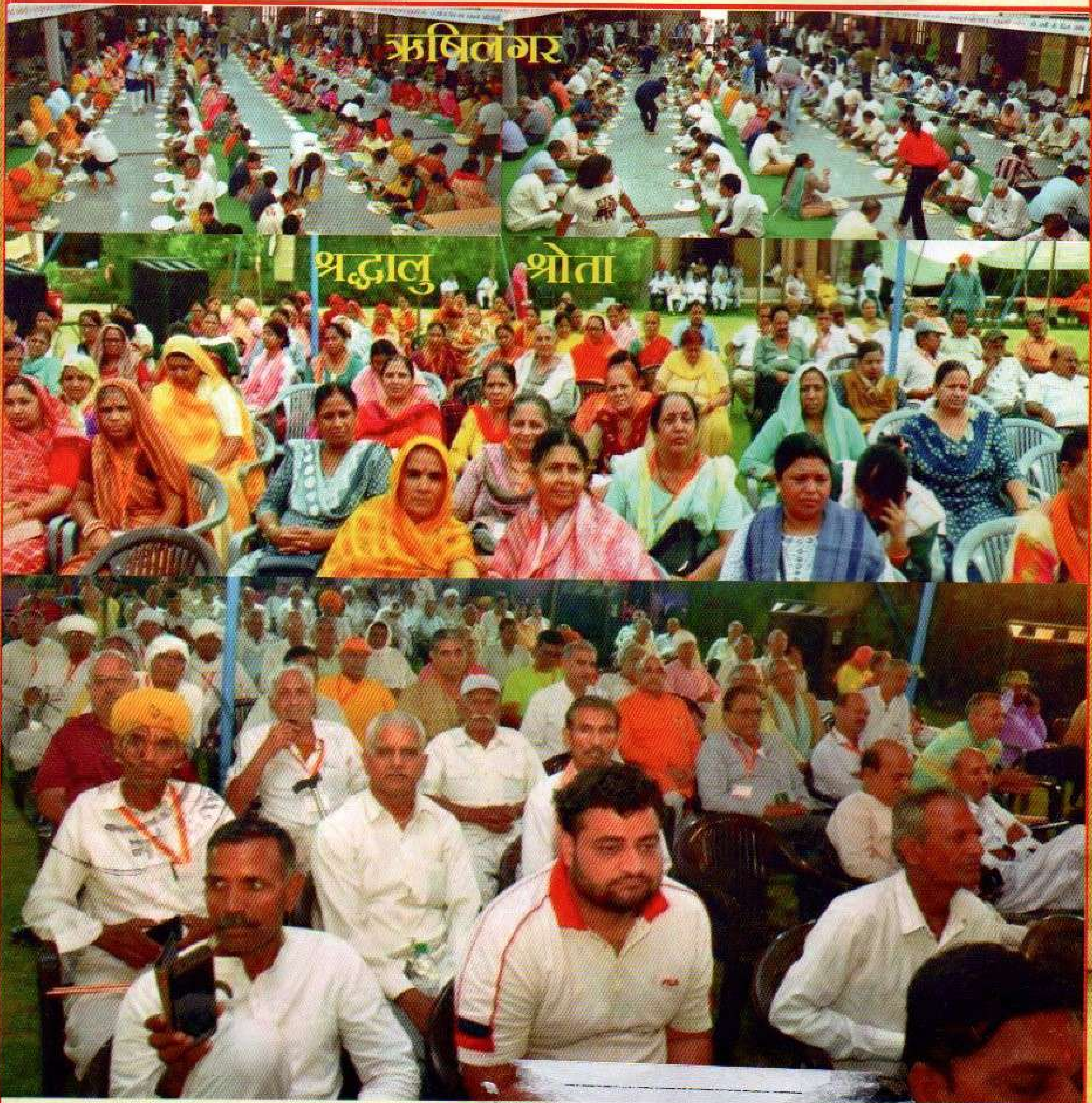

स्वत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास जोधपुर 0291-2516655 के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू की पोल जोधपुर फोन नं. 9829392411 से मुद्रित,

सम्पादक फोन नं. 9460649055

Book-Post